

राजभाषा रश्मि

अक्तूबर, 2022 - मार्च, 2023

भा.क.नि.
CCI

भारतीय कपास निगम लिमिटेड

एक मिनी रत्न कंपनी
(भारत सरकार का उपक्रम)
वस्त्र मंत्रालय

THE COTTON CORPORATION OF INDIA LIMITED

A Mini Ratna Company
(GOVERNMENT OF INDIA UNDERTAKING)
MINISTRY OF TEXTILES

राजभाषा रश्मि

संरक्षक



श्री ललित कुमार गुप्ता
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक

संपादक मंडल



श्री विजय कुरडगि
निदेशक (विपणन)



श्री एस. के. पाणिग्राही
मुख्य महा प्रबंधक (विपणन)



श्री राजेन्द्र कुमार गुप्ता
मुख्य महा प्रबंधक (वित्त/प्रशासन/राजभाषा)



श्री तिलक राज तनेजा
मुख्य महा प्रबंधक (वित्त)

अनुक्रमणिका

1. अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक की कलम से 01
2. संपादकीय 02
3. मातृभाषा मात्र भाषा नहीं होती 03
4. स्वतंत्रता और हिन्दी 09
5. भारत में लोक नृत्य 13
6. उच्च शिक्षा या कौशल अर्जन ! समय की मांग क्या है ? 17
7. एक पत्र देशवासियों के नाम 20
8. भारतीय दर्शन का आरंभ जानें इसके अभाव में भारतीयता अधूरी है 21



लेखों के तथ्यों का दायित्व स्वयं लेखक का है ।



अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक की कलम से...

राजभाषा रश्मि का नवीन अंक आपको समर्पित करते हुए मुझे अति प्रसन्नता हो रही है ।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 में हिंदी को राजभाषा घोषित किया गया है और राजभाषा अधिनियम 1963 तथा राजभाषा नियम 1976 द्वारा इसके कार्यान्वयन को प्रभावी बनाने के प्रयत्न किये गये । इसी दिशा में प्रति वर्ष राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा वार्षिक कार्यक्रम भी जारी किया जाता है, जिसमें प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अंतर्गत हिंदी की प्रगति के लिए विविध लक्ष्य निश्चित किये जाते है । आप सभी जानते हैं कि इन लक्ष्यों को प्राप्त करना हम सबका कर्तव्य है ।

हिंदी आम जनता की भाषा है और जब प्रशासन अपनी बात जनता तक जन-भाषा में पहुँचायेगा तभी हिंदी को राजभाषा का वास्तविक दर्जा प्राप्त होगा। इस सच्चाई को हमारे निगम ने पहचाना और इसलिये किसानों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए हम विस्तार गतिविधियाँ, किसान सम्मेलन आदि कार्यक्रम हिंदी अथवा प्रांतीय भाषाओं में ही आयोजित करते हैं । हमारा कार्य - कलाप किसानों से जुड़ा है, उनके लाभ की बात हम हिंदी या प्रांतीय भाषाओं के माध्यम से ही पहुँचाने में सफल हो सकते है । सरकारी योजनाओं की सफलता अथवा उसका सार्थक उपयोग तभी हो पायेगा जब उसकी जानकारी आम जनता तक जनता की अपनी भाषा में पहुँचेगी ।

भारतीय कपास निगम हिंदी कार्यान्वयन की दिशा में अपने भरसक प्रयासों से हिंदी के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। इस उपलब्धि में निगम के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों का अमूल्य योगदान इसमें शामिल है । हमें भविष्य में भी इस गौरव को कायम रखना है । हमें निगम के अन्य कार्यकलापों के साथ-साथ राजभाषा के लिए निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील बने रहना होगा ।

शुभकामनाओं सहित

ललित गुप्ता

ललित कुमार गुप्ता
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक



संपादकीय...

राजभाषा रश्मि आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार खुशी हो रही है ।

राजभाषा हिंदी हमारी संकृति और सभ्यता का प्रतीक है । यह उपयुक्त होगा कि सरकारी प्रयोजनों में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने हेतु यथासंभव प्रयास किए जाये । विभागीय कार्यों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने में पत्रिकाओं का प्रकाशन बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन करता है। भारतीय कपास निगम की हिंदी पत्रिका 'राजभाषा रश्मि' इस दिशा में ठोस कदम है । पत्रिका का प्रकाशन अधिकारियों और कर्मचारियों की सृजनशीलता को उजागर करने के साथ-साथ कार्यालयीन कामकाज में हिंदी का प्रयोग करने में उनकी क्षमता को बढ़ाएगा ।

गृह पत्रिका को समृद्ध, सुरूचिपूर्ण तथा पठनीय बनाने के लिए सभी अधिकारियों /कर्मचारियों की सहभागिता आवश्यक होती है, अतः मेरी आपसे तथा विशेष रूप के उन साथियों से जिनमें रचनाकार की क्षमतायें छिपी हैं, किन्तु किसी हिचक की वजह से अपनी स्तरीय रचनाओं से हमें वंचित रख रहे हैं, अनुरोध है कि वे भी अपनी रचनाओं को निरंतर भेज कर पत्रिका को उच्च स्तरीय बनाने में सहयोग प्रदान करें। आशा है आप अपनी गृह पत्रिका को अपना सहयोग देते रहेंगे ।

शुभकामनाओं सहित

राजेन्द्र कुमार गुप्ता

मुख्य महा प्रबंधक (वित्त/प्रशासन/राजभाषा)

मातृभाषा मात्र भाषा नहीं होती

विश्व में कहीं भी और कोई भी भाषा, भले ही वह कम समृद्ध हो, उस भाषा के समाज के विकास के लिए वही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि मातृभाषा मात्र भाषा नहीं होती, वह व्यक्ति के विकास की आधारशिला है। विश्व में संभवतः कोई ऐसा वैज्ञानिक, शिक्षाविद, दार्शनिक, चिंतक अथवा भाषाविद नहीं होगा जिसने मनुष्य के विकास के लिए मातृभाषा के महत्त्व को स्वीकार न किया हो। भाषाविदों के अनुसार समाज विकसित या अविकसित हो सकते हैं लेकिन कोई भी भाषा अविकसित नहीं होती। संसार की हर भाषा में अपने बोलने वालों की सभी संचार-अभिव्यक्ति-आवश्यकताओं को पूरा करने की स्वभाविक क्षमता होती है।

आज भारत में लोग न केवल अपनी भाषा से कटते जा रहे हैं बल्कि उसे हीन भाव से भी देखते हैं। इसका मुख्य कारण है हमारी लंबी पराधीनता। बारह सौ वर्ष पूर्व से इस देश पर विदेशी आक्रमणकारियों के हमले होते रहे और अपनी सत्ता को स्थायी बनाए रखने के लिए विदेशी शासकों ने भारतीय भाषाओं और ज्ञान-विज्ञान के स्थान पर अपनी भाषा और ज्ञान-विज्ञान को स्थापित करने का प्रयास किया। स्वतंत्रता के पश्चात सत्तासीन वर्ग ने अपना आधिपत्य बनाए रखने के लिए अपनी भाषा का प्रभुत्व बनाए रखा। कभी अरबी-फारसी तो कभी फ्रेंच, पुर्तगाली और अंग्रेजी। हर शासक नें हमारी भाषा के स्थान पर अपनी भाषा को चलाया। भारत में अक्सर अंग्रेजी में पढ़े लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि मातृभाषा क्यों? यह प्रश्न ही गलत है। प्रश्न तो यह होना चाहिए कि मातृभाषा में क्यों नहीं ? मातृभाषा ही वह भाषा है, जिसमें कोई व्यक्ति स्वभाविक रुप से सोचना, समझना और सीखना प्रारंभ करता है। भारत के संदर्भ में प्रश्न यह बनता है कि विदेशी भाषा यानी अंग्रेजी में क्यों ? इस बात को समझने के लिए हमें निम्नलिखित बिंदुओं को समझना होगा। पिछले 75 वर्ष में भारतवासियों की जो सोच बनाई गई है, उसे बदलना सबसे बड़ी समस्या है।

इस्लामिक आजाद विश्वविद्यालय, तेहरान के विज्ञान एवं अनुसंधान शाखा के प्रोफेसर रिज़वान नूर मौहम्मदी के अनुसार, परिष्कृत रुप में बौद्धिक (संज्ञानात्मक) विकास को तीव्रता से आगे बढ़ने और तर्क के स्तर पर प्रतिबिंब, समन्वय और सामाजिक संपर्क की प्रक्रिया बचपन से ही भाषा के माध्यम से होती है। इस प्रक्रिया में मातृभाषा जीवनभर प्राथमिक उपकरण की तरह काम करती है। कहने का अभिप्राय यह कि मातृभाषा रूपी इस उपकरण के माध्यम से चिंतन, मनन, विश्लेषण आदि के लिए उसे किसी अतिरिक्त श्रम की या किसी प्रकार के आंतरिक और बाह्य अनुवाद की आवश्यकता नहीं होती। जैसे-जैसे वह बढ़ता है, वह उस भाषा की शब्दावली को आत्मसात करता जाता है और उसकी अभिव्यक्ति क्षमता भी विभिन्न क्षेत्रों में उसी प्रकार बढ़ती चली जाती है। प्रकृति की यही स्वभाविक प्रक्रिया है। इसलिए मातृभाषा को पहली भाषा, मूल भाषा के रूप में सीखना

आवश्यक है। मातृभाषा बौद्धिक क्षमता का हिस्सा है। मातृभाषा वह भाषा है जिसे मनुष्य स्वभाविक रूप से जन्म से अर्जित करता है। यह बच्चे को उसके मानसिक, नैतिक और भावनात्मक विकास में मद्द करती है।

इसी बात को इसरो (भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन) के पूर्व अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध अंतरिक्ष वैज्ञानिक की अध्यक्षता में तैयार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कहा गया है कि किसी व्यक्ति के जीवन में उसकी मातृभाषा के महत्त्व की सबसे अच्छी और सटीक तुलना करने के लिए माँ के दूध से बेहतर कुछ नहीं। जैसे जन्म के एक या दो वर्ष तक बच्चे के शारीरिक और भावनात्मक विकास के लिए माँ का दूध और स्पर्श सर्वश्रेष्ठ होते हैं वैसे ही उसके संवेगात्मक, बौद्धिक और भाषिक विकास के लिए मातृभाषा या माँ की बोली। मातृभाषा की इस भूमिका पर विश्व में उसी प्रकार कहीं कोई भी मतभेद नहीं है, जैसे माँ के दूध के महत्त्व, प्रभाव और भूमिका पर कोई मतभिन्नता नहीं है।

इस विषय पर इतने सारे शोध, प्रयोग, अध्ययन हुए हैं, इतनी सारी किताबें लिखी गई हैं कि अब इसे एक सार्वभौमिक निर्विवाद सत्य के रूप में वैश्विक स्वीकृति मिल गई है। लेकिन भारत का कथित शिक्षित समाज इस वैश्विक स्वीकृति के विपरीत अपनी मातृभाषा और राष्ट्रीय भाषा के स्थान पर औपनिवेशिक भाषा की दासता की ओर तेजी से बढ़ रहा है।

अध्ययनों से पता चलता है कि जो बच्चे अपनी मातृभाषा में एक ठोस आधार के साथ स्कूल आते हैं, उनमें साक्षरता क्षमताओं का विकास होता है। कुल मिलाकर बच्चों की मातृभाषा के महत्त्व के बारे में, अनुसंधान उनके व्यक्तिगत और शैक्षिक विकास के लिए बहुत स्पष्ट है। स्पष्टतः मातृभाषा की शिक्षा में केंद्रीय भूमिका होती है। शिक्षा के माध्यम के संबंध में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का कहना था, 'माता का दूध पीने से लेकर जो संस्कार और मधुर शब्दों द्वारा शिक्षा मिलती है उसके और पाठशाला की शिक्षा के बीच संगती होनी चाहिए। पराई भाषा से वह श्रृंखला टूट जाती है और उस शिक्षा से पुष्ट हो कर हम मातृद्रोह करने लग जाते हैं।' शिक्षाविद् कृष्णजी का दावा है कि कई मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और शैक्षिक प्रयोगों ने साबित किया कि मातृभाषा के माध्यम से सीखने में अधिक गहराई और अधिक तीव्रता है, और यह अधिक प्रभावी है। वास्तव में कक्षा में छात्रों की मातृभाषा का उपयोग करके विषय सामग्री पढ़ाने से छात्रों के संज्ञानात्मक कौशल को विकसित किया जा सकता है।

यह कोई कम हैरानी की बात नहीं की लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति और उसकी तमाम प्रयासों के बावजूद भी स्वतंत्रता के समय देश की 99% से भी अधिक लोग मातृभाषा में ही पढ़ते थे लेकिन स्वाधीनता के पश्चात आशा के विपरीत स्थिति बदलती चली गई और आज स्थिति यह है कि छोटे-छोटे गांवों तक और उच्च शिक्षा के स्थान पर नर्सरी तक भी अंग्रेजी माध्यम पहुंच गया है। हर कोई अंग्रेजी रट रहा है। देश के अधिकांश लोग मातृभाषा या तो पढ़ते नहीं और पढ़ते भी हैं तो केवल किसी औपचारिकता को पूरी करने की दृष्टि से। मातृभाषा माध्यम लगभग लुप्त होता जा रहा है। इसके लिए कौन जिम्मेदार है ? यह चर्चा का एक अलग विषय हो सकता है, आज स्थिति

यह है कि देश के बड़े भूभाग में हमारे विद्यार्थी न तो ठीक से अपनी मातृभाषा जानते हैं, न देश की भाषा और न ही अंग्रेजी । शोधों ने यह सिद्ध किया है कि जीवन के आरंभिक वर्षों और प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा माध्यम में पढ़ने वाले बच्चों में सर्वश्रेष्ठ संवेगात्मक विकास के साथ-साथ सभी विषयों की समझ और अधिगम भी बेहतर होते हैं दुनिया के किसी भी स्थान-समाज में जन्म लेने वाले बच्चों के लिए मातृभाषा भाषा ही सर्वांगीण विकास तथा सभी विषयों के बारे में सीखने के लिए सर्वोत्तम माध्यम होती है। यह बात सुदूर जंगलों में रहने वाले वनवासी बच्चों पर भी उतनी ही लागू होती है, जितनी सबसे विकसित, संपन्न समाजों-देशों के बच्चों पर।

जो लोग विज्ञान को समझते हैं, वे समझ सकते हैं कि ज्ञान-विज्ञान का संबंध किसी भाषा विशेष से नहीं हो सकता है ? ज्ञान-विज्ञान का संबंध तो तर्क से है। विषय-वस्तु को समझते हुए तथ्यों का विश्लेषण करते हुए जब हम किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं तो ज्ञान-विज्ञान आगे बढ़ता है। लेकिन हमारे देश में और हम जैसे कई पूर्व गुलाम देशों में अधिकांशतः हम मौलिक रूप से चिंतन - मनन न करके केवल आयातित ज्ञान-विज्ञान को रटते हुए सामान्यतः उसका प्रयोग करते हैं। स्थापित तथ्य है कि मौलिक चिंतन अपनी भाषा से ही संभव है और मातृभाषा से बढ़कर कोई माध्यम हो नहीं सकता।

एक और बात भारत में विज्ञान के जितने विद्यार्थी हैं उतने शायद पूरे विश्व में न हों। 2019 के शिक्षा मंत्रालय के 'अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण' के मुताबिक देश में सबसे ज्यादा विज्ञान वर्ग के छात्र पीएचडी के लिए नामांकन कराते हैं। विज्ञान व प्रौद्योगिकी में मिलाकर 40 प्रतिशत, जो कि अन्य सभी संकायों से अधिक है। इसके बावजूद आज विभिन्न क्षेत्रों में नई अवधारणाओं और आविष्कारों आदि के मामले में विपुल जनसंख्या के बावजूद भारत विश्व के छोटे – छोटे देशों से भी काफी पीछे है। कारण यह कि विदेशी भाषाओं की दासता ने हमें मौलिक चिंतन और नए विचारों के बजाए औपनिवेशिक भाषाओं पर निर्भर बना दिया और हम विदेशी भाषाओं के माध्यम से उपलब्ध विदेशी ज्ञान-विज्ञान पर निर्भर होते चले गए। महात्मा गाँधी का कहना था कि यदि भारत में विज्ञान की शिक्षा मातृभाषा में दी जाती तो भारत में इतने आविष्कारक होते कि जो दो-तीन नाम आज हम लेते हैं, उन्हें तो याद भी नहीं करते।

मौलिक चिंतन तो मातृभाषा में ही होता भाषायी दासता के चलते हम देखें तो हमारे ज्यादातर लोग मूलभूत विज्ञान के बजाए प्रायोगिक विज्ञान के क्षेत्र में हैं। यदि हम किसी से स्वतंत्र भारत में कोई मूल आविष्कारक पूछें तो बताना कठिन हो जाएगा। तेहरान के प्रो. नूर मोहम्मदी के अनुसार शिक्षा के बीच स्वतंत्र सोच को प्रोत्साहित करने के लिए एक संभावित साधन मातृभाषा है। यूनेस्को के 2008 के समाचार पत्र के अनुसार, मातृभाषा में सीखने का संज्ञानात्मक और भावनात्मक मूल्य है। जब बच्चे अपनी मातृभाषा के माध्यम से सीख रहे हैं, तो वे अवधारणाएँ और बौद्धिक कौशल सीख रहे होते हैं ।

20 अक्टूबर 1917 को गुजरात के भरूच में एक शिक्षा सम्मेलन में दिए गए अपने लंबे संबोधन में गांधी जी

ने कहा था, "विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में दिमाग पर जो बोझ पड़ता है, वह बोझ हमारे बच्चे उठा तो सकते हैं लेकिन उसकी कीमत हमें चुकानी पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठाने लायक नहीं रह जाते। इससे हमारी स्नातक अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साही, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। उनमें खोज करने की शक्ति, विचार करने की शक्ति, साहस, धीरज, वीरता, निर्भयता और अन्य गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। इससे हम नई योजनाएं नहीं बना सकते, और यदि बनाते हैं तो उन्हें पूरा नहीं कर पाते। कुछ लोग जिनमें उपर्युक्त गुण दिखाई देते हैं, अकाल ही काल के गाल में चले जाते हैं।" उन्होंने आगे कहा, "एक अंग्रेज ने लिखा है कि मूल लेख और सोखता कागज के अक्षरों में जो भेद है, वही भेद यूरोप के और यूरोप के बाहर के लोगों में है। इस विचार में जो सच्चाई है वह एशिया के लोगों की स्वभाविक अयोग्य योग्यता के कारण नहीं है, इसका कारण शिक्षा का माध्यम है।"

गाँधी जी कहते हैं, "हम जगदीश चंद्र बसु और डॉक्टर प्रफुल्ल चंद्र राय को देखकर मोहित हो जाते हैं। मुझे विश्वास है कि यदि 50 वर्षों तक मातृभाषा द्वारा पढ़ाई होती तो हममें इतने बसु और राय होते कि उन्हें देखकर हमें अचंभा न होता।" महात्मा गांधी का स्पष्ट मत था कि जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा में नहीं समझाए जा सकते, तब तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिल सकता।

प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक जयंत विष्णु नारलीकर ने भारत में विज्ञान की शिक्षा के सबंध में कहा, "अगर भारत की सोई हुई प्रतिभाओं को जगाना है तो विज्ञान की शिक्षा का माध्यम हिंदी को बनाना होगा। इसके बिना भारतीय जनता और वैज्ञानिक विचारों के बीच विद्यमान दूरी को खत्म नहीं किया जा सकता और ऐसी दशा में भारतीय जनता और वैज्ञानिक विचारों के बीच जनभाषा का सहारा लेना बहुत जरूरी है।"

आईआईटी कानपुर और टैक्सास विश्वविद्यालय के स्नातक, सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र के विशेषज्ञ, उद्यमी, लेखक और शोधकर्ता संक्रांत सानु जिन्होंने विश्व के विभिन्न देशों में कार्य करते हुए भाषाओं की भूमिका पर भी अध्ययन किया, उन्होंने 'भाषा का अर्थशास्त्र' समझाते हुए अपनी चर्चित पुस्तक 'अंग्रेजी माध्यम का भ्रमजाल' में भाषायी अनुसंधान के आधार पर विश्व के विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति आय के आंकड़ों का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि विश्व के सर्वाधिक धनी बीस देश वे हैं, जहां शिक्षा का माध्यम और कामकाज की भाषा वहां की जनभाषा है, इसके ठीक विपरीत विश्व के सर्वाधिक निर्धन बीस देश वे हैं, जहां जनभाषा वहाँ की राजभाषा नहीं है और शिक्षा और कामकाज प्रायः उस भाषा में होता है जिस देश के वे कभी गुलाम थे।

कोई भी भाषा न केवल अपने क्षेत्र की संस्कृति की वाहिका होती है बल्कि हजारों वर्षों से संचित ज्ञान-विज्ञान की वाहिका भी होती है। यदि कोई भाषा सिमटती है या समाप्त होती है तो उसके साथ ही साथ वहां की पूरी संस्कृति भी नष्ट हो जाती है यदि हमें अपनी प्राचीन ज्ञान-विज्ञान अपने गीत-संगीत साहित्य सहित भाषा में निहित विभिन्न तत्वों को संरक्षित रखना है तो उसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि हम अपनी भाषा को अपनाएँ इससे

न केवल हमारी भाषा संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान का संरक्षण होगा बल्कि हमारा स्वयं का भी समुचित विकास हो सकेगा। भारत में जैसे-जैसे भारतीय भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता गया है वैसे-वैसे भारतीय धर्म - संस्कृति, आध्यात्म, भारतीय मूल्य, संस्कार तथा भारत का वैभवशाली ज्ञान-विज्ञान भी तिरोहित होता जा रहा है। इन्हें बचाने और बढ़ाने के लिए सबसे अधिक आवश्यक हैं हमारी भाषाएँ।

महात्मा गांधी का कहना था कि "मुझे यह नहीं बर्दाश्त होगा कि हिंदुस्तान का एक भी आदमी अपनी मातृभाषा को भूल जाए, उसकी हंसी उड़ाए, उससे शर्माए या उसे यह लगे कि वह अपने अच्छे से अच्छे विचार अपनी भाषा में नहीं रख सकता।" वे आगे कहते हैं, "मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियां क्यों न हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा, जिस तरह अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवनदाई दूध दे सकती है।" "इस संबंध में महात्मा गांधी का कहना था, "यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धांत रहे कि अंग्रेजी के जरिए ही हम अपने उनके विचार प्रकट कर सकते हैं उनका विकास कर सकते हैं तो इसमें जरा भी शक नहीं है कि हम सदा के लिए गुलाम बने रहेंगे।" मातृभाषा के संबंध में समग्र चर्चा को भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने निम्नलिखित चार पंक्तियों में बहुत पहले ही स्पष्ट कर दिया था, जो उनकी प्रसिद्ध कविता 'निज भाषा' से ली गई है।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।।

इसमें उन्होंने कहा है कि अपनी भाषा से ही सभी प्रकार की उन्नति संभव है, क्योंकि यही सारी उन्नतियों का मूलाधार है। मातृभाषा के ज्ञान के बिना हृदय की पीड़ा का निवारण संभव नहीं है। विभिन्न प्रकार की कलाएँ, असीमित शिक्षा तथा अनेक प्रकार का ज्ञान, सभी देशों से जरूर लेने चाहिये, परन्तु उनका प्रचार मातृभाषा के द्वारा ही करना चाहिए।

यदि हमें भारत का और भारत के नागरिकों का सर्वांगीण विकास करना है तो हमें अपनी मातृभाषाओं का सर्वोपरि महत्त्व देना होगा। और इस कार्य के लिए हमें पूरी कोशिश करनी होगी, केवल कविता कहानी से बात न बनी है न बनेगी। एक लंबी लड़ाई लड़नी होगी। 'वैश्विक हिंदी सम्मेलन' संस्था के माध्यम से पिछले करीब 9 वर्ष से देश – दुनिया के पंद्रह हजार लोगों और भारत – भाषा प्रेमियों को एकजुट कर इस कार्य में लगा है।

मेरा स्पष्ट मत है कि यदि भारत के विद्यार्थियों को रटने वाले विद्यार्थियों के स्थान पर सीख समझ कर ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नवोन्मेषी बनाना है तो उनकी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए। लेकिन अभिभावक अपने बच्चों को मातृभाषा माध्यम में पढ़ने के लिए भेज सकें इसके लिए न तो वातावरण है और न ही

सुविधाएँ। महत्त्वपूर्ण यह है कि स्वतंत्रता से लेकर अब तक भारत में रोजगार और सभी संसाधनों की ढ़लान अंग्रेजी की तरफ बना दी गई है। इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए जनमानस को जागरूक करने के साथ-साथ विधि एवं न्याय, शिक्षा-रोजगार तथा व्यापार-व्यवसाय को भारतीय भाषाओं के साथ जोड़ना पड़ेगा।

हाल ही में एनसीईआरटी (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद) नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क कमेटी में 11वीं एवं 12वीं कक्षाओं में दो भारतीय भाषाओं को अनिवार्य रूप से पढ़ाने की सिफारिश की है। कोठारी आयोग से लेकर प्रोफेसर यशपाल कमेटी या दूसरे विद्वानों ने भी अपनी भाषाओं में शिक्षा की बात कही है लेकिन सत्ता में अंग्रेजीदां वर्ग का प्रभाव होने के चलते पहले ऐसा हुआ नहीं। इसलिए बार-बार की सिफारिशों के बावजूद भी भारतीय भाषाएं आगे नहीं बढ़ सकी। नई शिक्षा नीति में भी बार-बार यह बात दोहराई गई है कि यथासंभव अपनी भाषा में ही शिक्षा दी जाए। प्राथमिक कक्षाओं में तो मातृभाषा में ही शिक्षा दिए जाने की बात कही गई है। हमें सरकार इस दिशा में आगे बढ़ती दिख रही है। यही नहीं मेडिकल और इंजीनियरिंग की शिक्षा भी भारतीय भाषाओं में शुरू करने के लिए पाठ्य पुस्तकें भी तैयार की जा रही है और उसी के साथ-साथ नौकरियों में भी अपनी भाषाओं का प्रवेश धीरे-धीरे होने लगा है। इस राह में कठिनाइयाँ तो बहुत हैं लेकिन धीरे-धीरे ही रास्ता बनेगा। यह प्रसन्नता की बात है कि नई शिक्षा नीति में मातृभाषाओं के माध्यम से शिक्षा और उनके अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की गई है यह किस प्रकार और किस हद तक लागू हो सकेगी, यह तो आने वाला वक्त ही बताएगा।

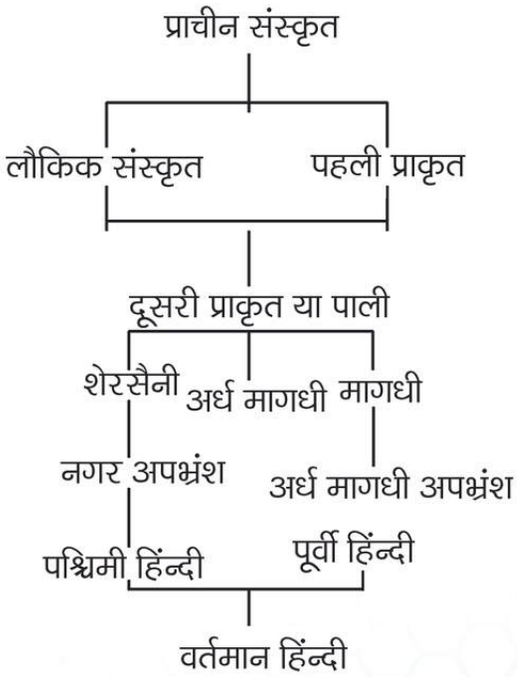
डॉ. मोतीलाल गुप्ता 'आदित्य'
पूर्व उपनिदेशक, हिंदी शिक्षण योजना
निदेशक, वैश्विक हिंदी सम्मेलन



स्वतंत्रता और हिन्दी

हिन्दी हमारी राजभाषा है और देश में राजभाषा तथा संपर्क भाषा के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। हिन्दी का विकास और इतिहास विस्तृत और विशाल है। इसकी प्रगति में देश के असंख्य लोगों का चिंतन और मनन शामिल है। हिन्दी आज जन गण मन की भाषा और भारत का गौरव है। किसी भी भाषा का राजभाषा बनने का सपना तो अवश्य ही रहता है लेकिन देश में किसी एक ही भाषा को राजभाषा के सम्मान से सम्मानित किया जाता है। किसी भाषा का राजभाषा बनने का रास्ता सुगम नहीं होता। यह कठिनाई और दुर्लभ परिस्थितियों से होकर गुजरता है। अगर इस विषय में हम हिन्दी की बात करें तो कह सकते हैं कि हिन्दी का भी राजभाषा बनने का पथ सुगम नहीं था।

इसके लिए हिन्दी के इतिहास पर एक नजर डालते हैं। हिन्दी का विकास संस्कृत से माना जाता है जो पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की टेढ़े-मेढ़े रस्तों से गुजरता हुआ ठेठ हिन्दी से आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली) के सफर को पूरा करता है। हिन्दी का विकास चार्ट कुछ इस तरह है-



आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे प्रबल प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों ने हिन्दी को जो रूप दिया वहीं आज आधुनिक हिन्दी के रूप में उपयोग होती है। भारतेन्दु जी का कहना था -

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति का मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।

ज्ञातव्य हो कि निज भाषा से भारतेन्दु जी का आशय हिन्दी से ही था। हिन्दी ने जब अपना कदम विकास की ओर बढ़ाया तो ऐसे ही विद्वजनों ने अपना हाथ फैलाकर हिन्दी को अपना बनाने के लिए यथासंभव प्रयास किया। यह अथक प्रयास तब सफल साबित हुआ जब स्वतंत्र भारत ने हिन्दी को राजभाषा बनाकर इसे उचित स्वीकृति और सम्मान दिया गया।

उल्लेखनीय है कि सन 1857 का सिपाही विद्रोह जिसे इतिहासकार पहली स्वतंत्रता की लड़ाई भी कहते हैं इसकी असफलता के बाद यह पूर्ण रूप से प्रमाणित हो गया कि एकता को कायम करने के लिए और उसे प्राप्त करने के लिए एक ऐसी सशक्त भाषा की आवश्यकता होगी जो अधिकतर भारतीय द्वारा बोली और समझी जाएगी। डॉ. अम्बा शंकर नागर का इस विषय में विचार है- सन 1857 का आंदोलन दास्ता के विरुद्ध स्वतंत्रता का पहला आंदोलन था। यह आंदोलन यद्यपि संगठन और एकता के अभाव के कारण असफल रहा, पर इसने भारतवासियों के ह्रदय में स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न कर दीं। आगे चलकर जब भारत के विभिन्न प्रांतों में स्वतंत्रता के लिए संगठित प्रयत्न आरंभ हुआ तो यह स्पष्ट हो गया कि बिना एक सामान्य भाषा के देश में संगठन होना असंभव है।

जब देश अपनी स्वतंत्रा की बलिबेदी में समर्पित होने के लिए आंदोलित हो रहा था तो कहना न होगा कि हिन्दी ही एक मात्र ऐसा जरिया थी जो देश के लोगों में नवोन्मेष और स्फूर्ति संचार करने में अनेक लेखों, कविताओं, कहानियों द्वारा जनता में जागरूकता लाने में सहभागिता दी है। निराला का गीत 'भारती जय विजय करे, कनक शस्य कमल धरे' हो या बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का आह्वान गीत 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ' नवयुवकों को स्वतंत्रता संग्राम में मर मिटने के लिए संदेश है। छायावादी युग में स्वतंत्रता के लिए जिस स्रोत से सभी भारतीय को जोड़ा गया वह अभिन्न रूप से हिन्दी ही है। हिन्दी के वाङ्मय को समृद्ध करने में छायावादी युग के पहले ही प्रयास शुरू हो गया था जो हरिश्चन्द्र पत्रिका में भारतेन्दु के लेख से यह प्रयास झलकता है। केवल कवियों या लेखकों ने ही नहीं विभिन्न समाचार पत्र और पत्रिकाओं ने भी हिन्दी के माध्यम से सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में जोड़ा। देश को जनक्रांति की ओर अभिमुखी होने में हिन्दी का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है।

देश में जब स्वतंत्रता की लहर सर्वत्र दौड़ रही थी तो स्वतंत्रता संग्रामियों ने भी इसी हिन्दी के द्वारा अपने विचार और ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद की। चाहे वह महात्मा गांधी का दांडी यात्रा का भाषण वर्धा में हो या सरदार पटेल का सेवाग्राम में हो। उन सभी ने अपने विचारों का प्रकटीकरण हिन्दी के द्वारा ही देशवासियों तक देना आसान समझा। हिन्दी की अपनी सर्वोत्तम और परिवर्तनीय स्वरूप की पहचान हुई। जॉर्ज ग्रियसन ने हिन्दी के वृहद कलेवर को समझकर इसका विश्लेषण किया और इसे सर्वोपरि माना। हिन्दी का लचीलापन और अपने में सभी भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता हिन्दी को 162 भाषाओं में श्रेष्ठता प्रदान करती है। भारत जैसे विशाल देश में बोलियों और भाषाओं की भरमार है। हिन्दी के वाङ्मय में जहां तत्सम, तत्भव शब्दावली है वहीं उर्दू, अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ़ारसी आदि शब्दों का भी समावेश अनायास ही हो गया है। जैसे कुछ के उदाहरण निम्न हैं-.

फारसी - कमर, खर्च, गुलाब, चश्मा

तुर्की - तोप, लाश
अरबी - अदालत, तारीख, मुकदम
पुर्तगाली - नीलम, कमरा, चीकू, पेरु
अंग्रेजा - ऑफिस, कॉफी, कप

सन 1826 में पहला साप्ताहिक पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन आरंभ हुआ। इस पत्रिका से हिन्दी पत्रिका जगत की शुरुआत मान सकते हैं। बाल गंगाधर तिलक जिन्होने ओजस्वी स्वर में 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा लगाया था उन्होने भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार का बीड़ा एकमन भाव से उठाया। उनके द्वारा प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'हिन्दी केसरी' पर्याप्त लोकप्रिय रहा। लोकमान्य तिलक देवनागरी को 'राष्ट्रलिपि' और हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' मानते थे। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के दिसम्बर, 1905 के अधिवेशन में कहा था- "भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रभाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है। समान भाषा के द्वारा हम अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं। अतएव यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाना चाहें तो सबके लिए समान भाषा से बढ़कर सशक्त अन्य कोई बल नहीं है"।

हिन्दी को सही अर्थों में हिन्दी बनाने में पं. मदनमोहन मालवीय का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने सन 1907 ई॰ में साप्ताहिक हिन्दी 'अभ्युदय' प्रारम्भ किया। यह पत्र सन 1915 में दैनिक समाचार-पत्र बना। मालवीय जी ने हिन्दी प्रचार-प्रसार को गति देने के लिए सन 1910 में प्रयागराज (इलाहाबाद) से 'मर्यादा' हिंदी मासिक पत्रिका और 20 जुलाई, 1933 'सनातन धर्म' हिंदी पत्र का प्रकाशन शुरू किया था। मदन मोहन मालवीय हिन्दी के प्रेमी थे। इनकी प्रेरणा से 'भारत', 'हिन्दुस्तान' और 'विश्वबन्धु' जैसे चर्चित पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ था। उनके ही योगदान से हिन्दी को एक विषय के रूप में चुना गया और स्वतंत्र भारत के विश्वविद्यालय में उसको स्थान मिला। उन्होंने हिन्दी भाषा के विषय में स्पष्ट रूप से कहा था- "राष्ट्रीय शिक्षा अपनी उत्तमता के उच्च शिखर पर तब तक नहीं पहुंच सकती, जब तक जनता की मातृभाषा अपने उचित स्थान पर शिक्षा के माध्यम तथा सर्वसाधारण के व्यवहार के रूप में स्थापित न की जाए"।

भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के अहिंसावादी नेता महात्मा गांधी ने सन 1917 में गुजरात के भड़ौच शिक्षा परिषद के अधिवेशन में हिन्दी की चर्चा और अंग्रेजी का बहिष्कार करते हुए कहा कि "राष्ट्र की भाषा अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाना देश में 'ऐसपेरेण्टों' को दाखिल करना है। अंग्रेजी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की कल्पना हमारी निर्बलता की निशानी है।" आगे उन्होने सन 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हिन्दी के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते हुए कहा; "आप हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य-पालन करना चाहिए"।

स्वाधीनता में ही नहीं हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आर्य समाज जैसे संस्थान का भी योगदान है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वराज, धर्म और हिन्दी के लिए आंदोलन किया। आर्य समाजकारी ने हिन्दी को 'आर्य भाषा' का नाम

दिया और अपने कार्यों को वे हिन्दी में करने लगे। आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन हिंदी में ही होता था। इसलिए हिंदी-प्रसार को मजबूत आधार मिला। आर्य समाज ने गुरूकुलों, कन्या-पाठशालाओं और महिला विद्यालयों की स्थापना की, जिनमें हिंदी की अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था थी। गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम विज्ञान की शिक्षा हिंदी में देने की सफल व्यवस्था की गई। इस विषय में श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति का कथन उद्धरणीय है, "भारत में पहला शिक्षणालय, जिसमें राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया, गुरूकुल काँगड़ी था।" महर्षि दयानन्द ने लोक-भाषा को उपदेश का साधन बनाकर अपने मिशन को लोकप्रिय और व्यापक बना दिया। बल्कि भविष्य में राष्ट्रभाषा बनने वाली आर्य भाषा को पुष्टि देकर राष्ट्र के स्वाधीनता-भवन की दृढ़ बुनियाद भी रख दी।

इस तरह देख सकते हैं कि स्वाधीनता संग्राम में हिन्दी की एक सर्वथा अलग भूमिका रही है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 25वाँ अधिवेशन सन 1936 में नागपुर में हुआ। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सम्मेलन के अध्यक्ष थे। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के प्रस्तावानुसार दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ 'हिन्दी प्रचार समिति' का गठन किया गया। इसका प्रथम अधिवेशन सन 1936 में वर्धा में हुआ। काका कालेलकर के सुझाव पर इसका नाम बदल कर 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' रखा गया। इस समिति का मुख्य उद्देश्य हिन्दी-प्रचार था और इसी आधार पर समिति मानती थी 'एक हृदय हो भारत जननी' समिति ने हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए सन 1938 से अपनी परीक्षाओं का संचालन शुरू किया। समिति ने जुलाई 1943 से 'राष्ट्रभाषा' मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसके पश्चात् 'राष्ट्रभारती' पत्रिका का प्रकाशन किया गया। इस समिति के देश से बाहर लंका, स्याम, सुमात्रा, मॉरिशस, इंग्लैंड आदि देशों में केन्द्र हैं।

समिति सम्मान और पुरस्कार से भी हिन्दी प्रचार-प्रसार को दिशा प्रदान करती है। इस समिति की गतिविधियों से हिन्दी को विशेष बल मिला है।

इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा; गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; हिन्दी विद्यापीठ, मुम्बई; महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना और बिहार राष्ट्रभाषा, पटना, हिन्दी प्रचार सभा ट्रस्ट आदि की हिन्दी प्रचार-प्रसार भूमिका उल्लेखनीय है।

जयंतिका मुखर्जी
राजभाषा अधिकारी
माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड

भारत में लोक नृत्य

अपने जीवन में सुख, समृद्धि व आनंद की चाह रखना मानव स्वभाव है। अपनी इसी चाह को पूरा करने के लिए वह सदैव प्रयासरत रहता है। यह सुखानुभूति, आनंदानुभूति, आत्मानुभूति उसे विभिन्न प्रकार की कलाओं के माध्यम से प्राप्त होती है। कला के सौंदर्य का उसके संपूर्ण जीवन पर प्रभावकारी व व्यापक प्रभाव पड़ता है। कला की सार्थकता भी इसी में होती है कि वह जीवन की वास्तविकताओं को अपने सौंदर्य के माध्यम से कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत करे। यथार्थ को आदर्श की भव्यता प्रदान कर मनुष्य जीवन में सरसता का संचार करे। कला अपनी असीम शक्ति के माध्यम से मानव मन की भावनाओं को सहज व सरल रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करती है। मानव के विकास में सहायता करती है और मानवीय संस्कृति के गौरव की रक्षा करती है। पारंपरिक कला रूपों में गीत, संगीत, नृत्य, कठपुतली और कहानी सुनाना आदि शामिल है।

ऐसी कलाएं जिसके लिए किसी औपचारिक योग्यता या प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती 'लोक कला' कहलाती हैं। 'लोक' शब्द का अर्थ ही है- मौलिकता और सरलता। भारत विभिन्न लोककलाओं और संस्कृतियों का गढ़ है। यहाँ 50 से भी अधिक पारंपरिक लोक कलाएं हैं। ये कलात्मक लोक कलाएं देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत हैं और भारतीय संस्कृति की विविधता दर्शाती हैं। भारत की अनेक जातियों एवं जनजातियों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही ये लोक कलाएं देश की पहचान हैं। यही कारण है कि ये बहुमुखी व बहुरूपी लोक कलाएं भारत के समृद्ध इतिहास को समझने एवं भारत की सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने में बहुत अहम भूमिका निभाती हैं।

भारत की विभिन्न पारंपरिक कलाओं, यथा अभिनय कला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, हस्तकला के समान ही लोक नृत्य कला भी एक अत्यंत प्राचीन, समृद्ध व गौरवपूर्ण कला है। लोक नृत्य को जन-जातीय नृत्य, प्राकृतिक नृत्य, सामाजिक नृत्य, स्वाभाविक नृत्य, फोक डांस आदि भी कहते हैं। नृत्य एक सार्वभौमिक कला है। भारतीय संस्कृति और धर्म प्रारंभ से ही नृत्य कला से जुड़े रहे हैं। भारतीय राज्यों के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों से आरंभ हुए लोक नृत्यों की उत्पत्ति 19वीं शताब्दी के दौरान मानी जाती है। वेदों में भी नृत्य का उल्लेख मिलता है। महापुराण, शिवपुराण, श्रीमद्भागवत, रामायण, महाभारत आदि धर्म ग्रंथों में नृत्य का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। हिंदू पौराणिक कथाओं में माना जाता है कि नृत्य की कल्पना ब्रह्मा ने की थी। नृत्य का सबसे प्राचीन ग्रंथ भरत मुनि का नाट्य शास्त्र माना जाता है। गुफाओं में प्राप्त आदिमानव के उकेरे चित्र और हड़प्पा व मोहनजोदड़ो की खुदाइयों में प्राप्त मूर्तियाँ नृत्य परंपरा के पुख्ता साक्ष्य हैं। यजुर्वेद में नृत्य संबंधी सामग्री प्राप्त होना नृत्य का शरीर को निरोगी रखने का उत्तम उपाय सिद्ध करता है।

विविधताओं में एकता वाले देश भारत के प्रत्येक राज्य की संस्कृति और परंपरा अलग-अलग है। उसी के

अनुरूप उनके अपने लोक नृत्य व नृत्य शैली भी भिन्न-भिन्न हैं। वेशभूषा व आभूषण, शारीरिक चाल व गति, चेहरे के हाव-भाव, साज-सजावट, समूह नृत्य व नृत्य में स्त्री और पुरुष की भागीदारी आदि लोक नृत्य के अभिन्न अंग हैं और उनमें मौजूद असमानता ही उनकी विशेषता है, जो उनकी महत्ता को और अधिक बढ़ाती है। भारत में मोटे तौर पर 2 तरह के नृत्य होते हैं- 1. शास्त्रीय नृत्य और 2. लोक नृत्य। संगीत नाटक अकादमी ने इन 8 भारतीय शास्त्रीय नृत्यशैलियों को राष्ट्रीय दर्जा प्रदान किया है- 1. भरतनाट्यम (तमिलनाडु) 2. कथकली (केरल) 3.कथक (उत्तर, पश्चिम और मध्य भारत) 4. ओड़िसी (ओडिशा) 5. मणिपुरी (मणिपुर) 6.मोहिनीअट्टम (केरल) 7. कुचिपुडी (आंध्रप्रदेश) और 8. सत्रीया (असम)

भारतीय राज्यों के अपने लोक नृत्य के उदाहरण हैं- मुखौटा, युद्ध नृत्य (अरुणाचल प्रदेश), अंकियानट, कली गोपाल, खेल गोपाल, तबल चोंगली, चोंगवी, झूमूरा, नट पूजा, नागा, बागुखंबा, बिहु, बिहुआ, भोरताल, रखाल लीला, सत्रीया (असम), ओट्टन तुल्लू, काली यट्टम, कुडी यट्टम, कुंभी, घंटामर्दाला, छड़ी, बेत कंभा, भद्रकालि, मधुरी, मरदाला, वीधी (आंध्रप्रदेश), कजरी, करन, चापरी, चरकूला, जांगर, थाली, नौटंकी, रासलीला (उत्तरप्रदेश), कजरी, कुमायूं, चौफला, जागरा, झूला, छोलिया, झोड़ा-चांचरी, पांडव नृत्य, हुड़का बौल (उत्तराखंड), ओडसी गरुड़ वाहन, छऊ, घूमरा, जदूर, पुगनाट, पैका, मुदारी, सवारी (ओडिसा), कर्गा, कुनीता, दसराता, बेदारा वेश, भूतकोला, यक्षगान, वीरागेस, सांता (कर्नाटक), कोडियाट्टम, ओप्पना, कूधू, चक्यार, थेयम, पदयानी (केरल), अकोलिया, गणपति भजन, गरबा, टिप्पाणी, डांडिया, डांशी, पणिहारी, पधार, भवई, रास, लास्य(गुजरात), कुंबी, कोली, खोल झगोर, गोंफ, घालो, तलगाड़ी, देखनी, दशावतार, पुगाड़ी, मांडी (गोवा), ककसार, करमा, गेड़ी, डंडा, डोमकच, दशहरा, पंथी, पंडवानी, परघोनी, फाग, बिलम्मा, राउत, सरहुल, सुआ, हुलकी (छत्तीसगढ़), धमाल, पाथर, बेताल, भांड, राउफ (जम्मू-कश्मीर), करमा, छऊ, झुमइर, डमकच, पाइका, फिरकल (झारखंड), कारागम, कुंभी, कडागम, कावड़ी, कोलाट्टम, पित्रल, भारतनाट्यम (तमिलनाडु), कुमीनागा, चांग लो, युद्ध नृत्य (नागालैंड), किकली, गिद्धा, जागो, जूली, झुम्मर, डंकारा, डफ, धूमल, नक्कल, भांगड़ा (पंजाब), कठपुतली, करमा, जाट-जटनी, जातरा, जादुर, झिझिया, नटना, माको, रामखेलिया, विदेसिया (बिहार), कीदा, तेरताली, नाचा, फूल पत्ती, मांच, राई (मध्य प्रदेश), कोली नृत्य, गणेश चतुर्थी, गोंदा, तमाशा, दशावतार, लावनी, लेझिम(महाराष्ट्र), कठपुतली, कालबेलिया, गणगौर, गौरी, घूमर, चकरी, तेरहताली, नौटंकी, रसधारी(राजस्थान), घेपू, डेरोगाटा, मुआ, लाहो (मेघालय), गोगा, डाफ, धमाल, नककल, फाग, मंजीरा, रासलीला, स्वॉग (हरियाणा) करियाला, छपेली, धामन, नटी, भगत, रास, हरनाझा हरिण (हिमाचल प्रदेश) आदि।

इन नृत्यों में कुछ लोक नृत्य महिला प्रधान हैं, तो कुछ पुरुष प्रधान और कुछ नृत्य पुरुष व महिला साथ-साथ करते हैं, उदाहरणार्थ- प्रत्येक मांगलिक व पारंपरिक उत्सवों के अवसर पर किया जाने वाला राजस्थान का

प्रतीक, नृत्यों का सिरमौर राजकीय नृत्य 'घूमर' नृत्य, नवरात्रों के दौरान देवी शक्ति की आराधना में गुजरात की सीमा से सटे हुए राजस्थान के दक्षिण क्षेत्र में किया जाने वाला 'गरबा' नृत्य, हरियाणा के भांगड़ा क्षेत्र का 'लूर' (अर्थ-लड़की) नृत्य केवल महिलाओं द्वारा किया जाने वाला नृत्य है। पाली, नागौर और जैसलमेर में बाबा रामदेव की आराधना में तेरह मंजीरों की सहायता से किया जाने वाला 'तेरहताली' नृत्य कामड़ जाति की महिलाओं द्वारा किया जाता है। भगवान शिव और माता गौरी के नाम से किया जाने वाला 'सुआ' नामक प्रेमनृत्य छत्तीसगढ़ की महिलाओं व किशोरियों द्वारा किया जाता है। राजस्थान के प्रसिद्ध लोकनृत्यों में से एक 'कालबेलियी' नृत्य सपेरा जाति की स्त्रियों द्वारा किया जाता है। पंजाब के महिला नृत्य शैली में 'किकली', 'गिद्दा', 'जागो', 'सम्मी' आदि शामिल हैं। जालौर क्षेत्र में विभिन्न मुद्राओं में लय-बद्ध तरीके से किया जाने वाला 'ढोल' नृत्य पुरुषों द्वारा किया जाता है। सावन-भादों में किया जाने वाला राजस्थान का धार्मिक नृत्य 'गवरी/राई' पुरुष प्रधान लोक नृत्य है। फसल कटाई के अवसर पर वाद्य यंत्रों एवं गीत के साथ पंजाब में किया जाने वाला जोशीला व मस्ती भरा नृत्य 'भांगड़ा' पुरुषों द्वारा किया जाता है। पंजाब के पुरुष लोक नृत्यों में 'जूली', 'झुम्मर', 'डंकारा', 'धूमल', 'लुड्डी' आदि भी शामिल हैं। फाल्गुन के महीने में किसानों द्वारा किए जाने वाला 'फाग' नृत्य, गणगौर पर्व पर किया जाने वाला राजस्थानी धार्मिक लोक नृत्य 'गौर' महिलाओं और पुरुषों द्वारा किया जाता है।

भारत के लोक जीवन और संस्कृति को दर्शाने वाले ये लोक नृत्य विभिन्न शुभ अवसरों, सामाजिक व सांस्कृतिक उत्सवों, पर्वो, धार्मिक अनुष्ठानों, रीति-रिवाजों, कई त्योहारों में किए जाते हैं, जो मानव जीवन को नव चेतना, उत्साह और उमंग से भर देते हैं। संगीतमय, सजीव, सरस, प्रभावशाली तथा भावना से परिपूर्ण इन लोक नृत्यों का महत्त्व हमारे जीवन में सर्वोपरि है। लोकनृत्य का सृजनकर्ता कोई व्यक्ति विशेष न होकर, समाज या लोक होने के कारण ये पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं और उन पर उस पूरे समाज की छाप होती है। यही कारण है कि लोकनृत्य सर्वगम्य, सर्वसुलभ और सर्वग्राह्य होते हैं। इन्हें सीखने के लिए किसी विशेष शास्त्रीय नियम व अनुशासन की आवश्यकता नहीं होती। ये लोकगीत, लोकवाद्य और लोक संगीत पर निर्भर करते हैं। अभिनय शैली, अलंकरण, आभूषण, भाव-भंगिमा, लोकगीत, लोकवाद्य, रंगबिरंगी वेशभूषा के कारण लोक नृत्यों में मनोरंजन शक्ति का गुण अपार होता है। यही कारण है कि संगीतमय रंगारंग नृत्य की प्रस्तुति सभी का मन मोह लेती है और हर प्रकार के तनाव से मुक्ति प्रदान करती है।

लोक नृत्य की यह विशेषता होती है कि वे मन को आनंदित व प्रफुल्लित कर जीवन में नई उमंग भर देते हैं। भावनात्मक संतुष्टि पैदा कर मन को शांति पहुँचाते हैं। इनमें शारीरिक गतिविधियाँ अधिक होने के कारण ये शारीरिक मजबूती बढ़ाते हैं। अपने मनोभावों को दूसरों तक संप्रेषित करने के कौशल का विकास करने सहित कल्पना व सृजनात्मक शक्ति विकसित करते हैं। लोक नृत्य सौहार्द, आपसी मेल-जोल, एकता भाव व प्रेम

प्रसारित कर सामाजिक संबंधों को प्रगाढ़ता प्रदान करने में भी सहायक होते हैं। भारतीय समाज के अंतःप्रेम, आस्था-विश्वास, काम-काज, धर्म-संस्कृति, भक्ति-भाव, रीति-रिवाज, सहज श्रृंगार, व्यायाम के अनेकानेक गुण आदि अंतर्निहित होते हैं। इनके माध्यम से पारिवारिक और सामाजिक जीवन की अनेक झाँकियाँ आसानी से देखी जा सकती हैं तथा सामाजिक परंपराओं व मान्यताओं को जीवंत रखा जा सकता है।

सरलतापूर्वक व मनमोहक स्वरूप में संस्कृति, सभ्यता, परंपराओं व मनोभावों को प्रदर्शित करने की अद्‌भुत कला के चलते भारतीय लोक नृत्य कला आज भी प्रासंगिक और लोकप्रिय है। भारतीय नृत्य कला को जानने का अर्थ भारतीय धर्म और संस्कृति को जानना है। यही कारण है कि भारत सरकार ने इस समृद्ध सांस्कृतिक पारंपरिक कला को संरक्षित रखने के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं। मानवीय अभिव्यक्तियों की इस रसमय विरासत को आने वाली पीढियोंकी पहुँच के लिए आसान बनाया जा रहा है। लोक नृत्य से निश्चित ही देश की संस्कृति में और भी अधिक निखार व विविधता लाने में मदद मिलेगी।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य





डॉ. मीना राजपूत, वरिष्ठ सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
केंद्रीय भंडारण निगम, क्षेत्रीय कार्यालय, मुंबई

उच्च शिक्षा या कौशल अर्जन ! समय की मांग क्या है?

सामान्य शिक्षा वह होती है जो हम स्कूल, प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय में पहली कक्षा से प्रारंभ करके बारहवीं कक्षा तक ग्रहण करते हैं। जबकि उच्च शिक्षा का अर्थ है सामान्य रूप से दी जाने वाली शिक्षा से ऊपर किसी विशेष विषय या विषयों में विशेष शिक्षा ग्रहण करना। उच्च शिक्षा, शिक्षा के उस स्तर का नाम है जो विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक विश्वविद्यालयों, कम्युनिटी महाविद्यालयों, लिबरल आर्ट कॉलेजों एवं प्रोद्योगिकी संस्थानों के द्वारा प्रदान की जाती है।

प्राथमिक एवं माध्यमिक के बाद यह शिक्षा का तृतीय स्तर है जो प्रायः ऐच्छिक होता है अर्थात आवश्यक नहीं होता है। इसके अंतर्गत स्नातक, परास्नातक, व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि आते हैं । उच्च शिक्षा का कौशल अर्जन से कोई सीधा संबंध नहीं है। यदि आपको कौशल अर्जित कर ना है तो आप कम शिक्षित होकर भी बेहतर कौशल अर्जित कर सकते हैं। कौशल अर्जित करने का कोई विशष क्षेत्र नही होता । भारत का उच्च शिक्षा तंत्र अमेरिका एवं चीन के बाद विश्व का तीसरा सबसे बड़ा उच्च शिक्षा तंत्र है। विगत पचास वर्षों में देश के विश्वविद्यालयों की संख्या में 11.6 गुना, महाविद्यालयों में 12.5 गुना , विद्यार्थियों की संख्या में 60 गुना और शिक्षकों की संख्या में 25 गुना वृद्धि हुई है । सभी को उच्च शिक्षा के समान अवसर सुलभ कराने की नीति के अंतर्गत संपूर्ण देश में महाविद्यालयों एवंम विश्वविद्यालयों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। उच्च शिक्षा द्वारा युवकों को अपनी रुचि, रुझान, योग्यता एवं क्षमता के अनुसार किसी कार्य को कुशलतापूर्वक करने योग्य बनाया जाता है। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही प्रायः जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करते हैं । उच्च शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान का संकलन , खोज तथा प्रसार करना है। उच्च शिक्षा के द्वारा ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना होता है जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं मानसिक दृष्टि से प्रबुद्ध हो। इसके द्वारा व्यक्तियों के आनुवांशिक गुणों को ज्ञात कर उनका विकास करना तथा प्रजातंत्र की सफलता के लिए कुशल नागरिक तैयार करना भी होता है।

उच्च शिक्षा अनुसंधान परिणाम, अनुभव और अंतर्दृष्टि के आदान-प्रदान के अवसर प्रदान करती है और विशेषज्ञों के बीच चल रही चर्चा के लिए एक मंच प्रदान करती है। उच्च शिक्षा अधिकारिक अवलोकन लेख, तुलनात्मक अध्ययन और विशेष समस्याओं या मुद्दों के विश्लेषण प्रकाशित करती है । उच्च शिक्षा के चार प्राथमिक कार्य है।

पहला : उन व्यवसायों एवं व्यवसायों के सदस्यों को प्रशिक्षण देना जिनके लिए हाई स्कूल से परे औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता होती है।

दूसराः बड़े पैमाने पर समुदाय में औपचारिक शैक्षिक सेवाओं का प्रदर्शन ।

तीसरा : अनुसंधान को प्रोत्साहित करना ।

चौथा : ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करने के लिए विद्वानों को तैयार करना।

जबकि कौशल अर्जन करने के लिए अपनी क्षमताओं पर भरोसा करना पड़ता है। कौशल अर्जन करने के लिए समृद्धि और आकर्षक रूप रंग की नही बल्कि विशिष्ट गुणों जैसे धैर्य, निष्ठा एवं कार्यकुशलता की आवश्यकता होती है।

कौशल अर्जन करना ही आज के समय की मांग है। कौशल अर्जन करने हेतु हमें औरों से कुछ अलग करना होता है । एक ही तरीके से बार-बार किसी काम को करते रहने पर परिणाम भी एक जैसे ही आते हैं यानी किसी बड़ी सफलता की अपेक्षा नहीं की जा सकती । जो लोग जीवन में नए कीर्तिमान स्थापित करना चाहते हैं, ऐसे प्रयास से उनके लिए लीक से हटकर काम करना महत्त्वपूर्ण होता है। वास्तव में प्रयास में भिन्नता ही सफलता का गूढ़ मंत्र है।

कौशल अर्जन करने के लिए अगर आप सामान्य से अलग फल चाहते हैं तो अलग तरह से प्रयास भी करना होगा। सभी को जीवन में ऐसा एप्रोच विकसित करना चाहिए निजी जीवन में भी इसका अभ्यास करना चाहिए। इससे व्यक्तिगत एवं प्रोफेशन दोनों स्तर पर लाभ होते हैं। एक नेता को कुशल नेता बनने के लिए भी उसे अपने सहयोगियों के प्रबंध में कुशल एप्रोच से काम करना होता है। अपने सहयोगियों के साथ व्यक्ति को इस तरह जुड़ा होना चाहिए कि वह उनकी समस्याओं को बिना बताए सहज ही समझ सके। उसमे सभी के लिए सहानुभूति के साथ समानुभूति का भाव होना चाहिए । इस प्रकार की सच्ची भावनाएं नेतृत्व के प्रति लोगों को आकर्षित करती हैं, उसे लोकप्रिय बनाती हैं टीम में लोगों का एक दूसरें पर विश्वास ही टीम लीडर को वास्तविक शक्ति प्रदान करता है । एक आदमी कितना भी योग्य क्यों ना हो, उसे सभी कार्यों की जानकारी नहीं होती, कहावत है "अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता" अगर नेतृत्व टीम के लोगों पर विश्वास करके उनकी योग्यता के अनुसार काम दे तो स्वतः अच्छे परिणाम मिलते हैं। हो सकता है कि अंतिम परिणाम टीम लीडर की अपेक्षा से भी कहीं अधिक हो । सबसे बड़ी जरूरत होती है ,सहयीगियों को उत्साहित व प्रेरित करना । यही उसके कौशल की परीक्षा होती है।

आज के दौर में कौशल अर्जन करना इसलिए महत्त्वपूर्ण हो गया है कि वही लीडर हमेशा अच्छा माना जाएगा जो अपने सहयोगियों को उनके काम के अनुसार उसका श्रेय देता हो । इससे उसके पद पर कोई आंच नही आती बल्कि उसकी लोकप्रियता बढ़ती है। अलग-अलग विचारों तथा प्रकृति के लोगों का नेतृत्व करना हमेशा एक कठिन कार्य होता है। विभिन्न मनः स्थिति के ये लोग उससे अलग-अलग व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। कई बार ये अपेक्षाएं अंतर्विरोधी भी होती हैं, जिन पर खरा उतरना किसी के लिए भी मुश्किल होता है । इस प्रकार के सभी अंतर्विरोधों को साधते हुए उसे अपना कौशल दिखाते हुए काम करना होता है जिससे लक्ष्य समय सीमा के भीतर पूरा किया जा सके।

इसके साथ-साथ एक नेतृत्वकर्ता को सभी प्रकार के सुझावों के लिए भी अपना दिमाग खुला रखना

चाहिए । उसे कभी भी कोई बात सुनने से मना नहीं करना चाहिए । किसी काम को करते समय सकारात्मक सुझावों का गुण दोषों के आधार पर स्वीकार कर कार्य प्रक्रिया में परिवर्तन लाना चाहिए। इससे बेहतर परिणाम तो मिलते ही है साथ ही टीम भावना में भी बढ़ोतरी होती है।

कौशल अर्जन करने के लिए किसी को भी अपनी क्षमता को भी पहचानना चाहिए तथा सही एप्रोच अपनानी चाहिए। कौशल अर्जन करने का एक बड़ा गुण यह भी है कि वह व्यक्ति किसी भी वस्तु या बात को ठीक से याद रखे। किसी वस्तु या बात को याद रखने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि हर काम को आनंद के साथ करे क्योंकि अक्सर हम जिस काम को दिल लगाकर करते हैं, उसे लंबे समय तक याद रखते हैं।

याद रखने के कौशल को हासिल करने का सबसे अच्छा तरीका है कि किसी भी तरह की गतिविधि या काम को एक दूसरे से को रिलेट करें । यदि आप बहुत ही कम समय में कुछ भी याद करना चाहते हैं तो एसोसिएशन मैथड सर्वाधिक प्रभावी हो सकता है। उदाहरण स्वरूप जब आप बाजार कपड़े सिलाने के लिए जा रहे हो तो इसके साथ कपड़े धुलाने और प्रेस कराने को एक साथ जोड़ सकते हैं। जब आप किसी डिपार्टमेंटल स्टोर जाते हैं तो जरूरत की वस्तुओं को एक साथ याद रख सकते हैं। इस तरीके से आप अपनी स्मरण शक्ति को ज्यादा प्रभावी बना सकते हैं। अतः निष्कर्ष यह है कि उच्च शिक्षा के अपेक्षा कौशल अर्जन ही आज के समय की मांग है।

अवनीश कुमार गुप्ता, वरिष्ठ प्रबंधक
केनरा बैंक , नोएडा



एक पत्र देशवासियों के नाम

भारत के देशवासियों कुछ तो मुझपे रहम करो,
क्यों करते हो इतना लालच कहीं तो थोड़ा अपना पेट भरो (सब्र करो).

सारे पेड़ काट कर तुमने जो भवनों का निर्माण किया,
फिर मुझसे पूछते हो कि, हे धरती माँ, हमने कहाँ आपका अपमान किया?

घर-घर R.O. मशीन लगने से, मेरा पानी खत्म होने को आया है,
फिर मुझे कहते हो कि, हे धरती माँ, कहाँ हमने आपको नोच- नोच कर खाया है?

आज भी हैं गाँव में कुओं का चलन, वहाँ पानी भी मीठा आता हैं ,
दूर शहर आज हर आदमी पानी को व्यर्थ बहाता हैं.

किसान पूछता है मुझसे कि कैसे इस धरती को उपजाऊँ बनाऊ मैं ?
तुम ही बताओं भारतवासियों पानी ना होने की वजह से कैसे सोना उपजाऊँ मैं ?

अगर बचना चाहते हो भूकंप के झटकों से तो, करो वादा कि अब और पेड़ नहीं काटे जायेंगे ,
और सब मिलकर नए पेड़ लगाएंगे ।

अगर, नहीं निभाया तुमने अपना वादा, तो ये दुनिया कहीं पानी से डुबेगी और कहीं ऐसे ही धरती खिसकेगी....।
और फिर एक बार तुर्की की तरह किसी बच्चे और किसी माँ की चीखे गुँजेंगी ।

अभी भी संभल जाओं देशवासियों क्यो इतना तड़पाते हो ...
अपने बच्चों को पेड़ लगाना और पानी बचाना क्यों नहीं सिखलाते हों ।

- मिलन पुनीत राठी

भारतीय दर्शन का आरंभ जानें इसके अभाव में भारतीयता अधूरी है

भारत में वैदिक काल से ही दर्शन का प्रादुर्भाव दिखाई देने लगता है, भारतीय दर्शनों में छः दर्शन अधिक प्रसिद्ध हुए 'न्याय' महर्षि गौतम का, कणाद का 'वैशेषिक', कपिल का 'सांख्य', पतंजलि का 'योग', जैमिनि की 'पूर्व मीमांसा'। ये सब 'वेदान्त' वैदिक दर्शन के नाम से जाने जाते हैं , क्योंकि ये वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं। जो दर्शन वेदों की प्रमाणिकता को स्वीकार करते हैं वे 'आस्तिक' कहलाते हैं और जो स्वीकार नहीं करते उन्हें नास्तिक की संज्ञा दी गई है। किसी भी दर्शन का आस्तिक या नास्तिक होना परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने पर निर्मम न होकर वेदों की प्रमाणिकता को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने पर निर्भर है। यहाँ तक की बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों का भी उद्‌गम उपनिषदों में है; यद्यपि उन्हें सनातन धर्म नहीं माना जाता है, क्योंकि वे वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करते।

हमें बौद्धकाल में दार्शनिक, चिन्तन की प्रगति, साधारणतः किसी ऐतिहासिक परंपरा पर होनेवाले किसी प्रबल आक्रमण के कारण ही सम्भव होती है, जब कि मनुष्य-समाज पीछे लौटने को और उन मूलभूत प्रश्नों को एक बार फिर उठाने के लिए बाध्य हो जाता है जिनका समाधान उसके पूर्व पुरुषों ने प्राचीनतर योजनाओं के द्वारा किया था। बौद्ध तथा जैन धर्मों के विप्लव ने वह, विप्लव अपने-आप में चाहे जैसा भी था, भारतीय विचारधारा के क्षेत्र में एक विशेष ऐतिहासिक युग का निर्माण किया, उसने कट्टरता की पद्धति को अन्त में उड़ाकर ही दम लिया तथा एक समालोचनात्मक दृष्टिकोण को उत्पन्न करने में सहायता दी। महान बौद्ध विचारकों के लिए तर्क ही ऐसा मुख्य शस्त्रसागर था जहां सार्वभौम खंडनात्मक समालोचना के शस्त्र गढ़कर तैयार किए गए थे। बौद्ध धर्म ने मस्तिष्क को पुराने अवरोधों के कष्टदायक प्रभावों से मुक्त करने में विरेचन का काम किया है।

कुमारिल भट्ट, जिनकी सम्मति इन विषयों में प्रामाणिक समझी जाती है, स्वीकार करते हैं कि बौद्ध दर्शनों ने उपनिषदों से प्रेरणा ली है, और वे यह युक्ति देते हैं कि इनका उद्देश्य अत्यन्त विषय-भोग पर रोकथाम लगाना था। वे यह भी घोषणा करते हैं कि ये सब प्रामाणिक दर्शन हैं। वेद को स्वीकार करने का अर्थ यह है कि आध्यात्मिक अनुभव से इन सब विषयों में शुष्क तर्क की अपेक्षा अधिक प्रकाश मिलता है।

वास्तविक तथा जिज्ञासा-भाव से निकाला हुआ संशयवाद विश्वास को उसकी स्वाभाविक नीवों पर जमाने में सहायक होता है। नीवों को अधिक गहराई में डालने की आवश्यकता का ही परिणाम महान दार्शनिक हलचल के रूप में प्रकट हुआ, जिसने छः दर्शनों को जन्म दिया जिनमें काव्य तथा धर्म का स्थान विश्लेषण और शुष्क समीक्षा ने लिया रूढ़िवादी सम्प्रदाय अपने विचारों को संहिताबद्ध करने तथा उसकी रक्षा के लिए तार्किक प्रमाणों का आश्रय लेने को बाध्य हो गए। दर्शनशास्त्र का समीक्षात्मक पक्ष उतना ही महत्त्वपूर्ण हो गया है कि जितना कि अभी तक प्रकल्पनात्मक पक्ष था। दर्शनकाल से पूर्व के दार्शनिक मतों द्वारा अखण्ड विश्व के सम्बन्ध में कुछ

सामान्य विचार तो अवश्य प्राप्त हुए थे, किन्तु यह अनुभव नहीं हो पाया था कि किसी भी सफल कल्पना का आधार ज्ञान का एक समीक्षात्मक सिद्धान्त ही होना चाहिए। समालोचकों ने विरोधियों को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वे अपनी प्रकल्पनाओं की प्रामाणिकता किसी दिव्य ज्ञान के सहारे सिद्ध न करें, बल्कि ऐसी स्वाभाविक पद्धतियों द्वारा सिद्ध करें जो जीवन और अनुभव पर आधारित हों कुछ ऐसे विश्वासों के लिए, जिनकी हम रक्षा करना चाहते हैं, हमारा मापदण्ड शिथिल नहीं होना चाहिए। इस प्रकार आत्मविद्या अर्थात दर्शन को अब आन्वीक्षिकी अर्थात अनुसंधानरूपी विज्ञान का सहारा मिल गया। दार्शनिक विचारों का तर्क की कसौटी पर इस प्रकार कसा जाना स्वाभावतः कट्टरतावादियों को रुचिकर नहीं हुआ। श्रद्धालुओं को यह निश्चित ही निर्जीव लगा होगा, क्योंकि अंतः - प्रेरणा के स्थान पर अब आलोचनात्मक तर्क आ गया था। चिन्तन की उस शक्ति का स्थान जो सीधी जीवन और अनुभव से फूटती है, जैसी कि उपनिषदों में, और आत्मा की उस अलौकिक महानता का स्थान जो परब्रह्म का दर्शन और गान करती है, जैसा कि भगवद् गीता में है, कठोर दर्शन ले लेता है। इसके अतिरिक्त, तर्क की कसौटी पर पुरानी मान्यताएं निश्चित ही खरी उतर सकेंगी यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता था। इतने पर भी उस युग की सर्वमान्य भावना का आग्रह था कि प्रत्येक ऐसी विचार धारा को, जो तर्क की कसौटी पर खरी उतर सके "दर्शन" के नाम के ग्रहण करना चाहिए। इसी कारण उन तभी तर्कसम्मत प्रयासों को जो विश्व के सम्बन्ध में फैली विभिन्न बिखरी हुई धारणाओं को कुछ महान व्यापक विचारों में समेटने के लिए किए गए, दर्शन की संज्ञा वी गई। ये समस्त प्रयास हमें सत्य के किसी अंश को अनुभव कराने में सहायक सिद्ध होते हैं। इससे यह विचार बना कि प्रकट रूप में पृथक प्रतीत होते हुए भी, ये सब दर्शन वस्तुतः एक ही बृहत ऐतिहासिक योजना के अंग हैं और जब तक हम इन्हें स्वतंत्र समझते रहेंगे, तथा ऐतिहासिक समन्वय में इनकी स्थिति पर ध्यान नहीं देंगे, तब हम इनकी वास्तविकता को पूर्णरूप से हृदयंगम नहीं कर सकते।

तर्क की कसौटी को स्वीकार कर लेने पर काल्पनिक मान्यताओं के प्रचारकों का विरोध नरम पड़ गया और उससे यह स्पष्ट हो गया कि उनका आधार उतना सशक्त व सुदृढ़ नहीं था और उन विचारधाराओं को दर्शन का नाम देना भी ठीक नहीं था। किन्तु भौतिकतावादियों, संशयवादियों और कतिपय बौद्ध धर्मानुयायियों के विध्वंसात्मक जोश ने निश्चयात्मक ज्ञान के आधार को ही नष्ट कर दिया। हिन्दू मानस इस निषेधात्मक परिणाम को कभी शांति से ग्रहण नहीं कर पाया। मनुष्य संशयवादी रह कर निर्वाह नहीं कर सकता। निरे बौद्धिक इन्द से ही काम नहीं चल सकता। वाद-विवाद का स्वाद मानव की आत्मिक भूख को शान्त नहीं कर सकता। ऐसे शुष्क तर्क से कुछ लाभ नहीं जो हमें किसी सत्य तक न पहुँचा सके। यह असम्भव था कि उपनिषदों के ऋषियों जैसे आत्मननिष्ठ महात्माओं की आशाएँ और महत्वाकांक्षाएँ, तार्किक समर्थन के आभाव में यों ही नष्ट नहीं हो जाती। और यह भी असंभव था कि शताब्दियों के संघर्ष और चिंतन से भी मानव समस्या के समाधान की दिशा में कुछ आगे न जाता। एक मात्र निराशा में ही उसका अन्त नहीं होने दिया जा सकता।

तर्क को भी अन्ततोगत्वा श्रद्धा का ही आश्रय ढूंढ़ना पड़ता है। उपनिषदों के ऋषि पवित्र ज्ञान के शिक्षणालय के महान शिक्षक हैं। वे हमारे आगे ब्रह्मज्ञान व आध्यात्मिक जीवन की सुन्दर व्याख्या रखते हैं। यदि निरे तर्क से मानव यथार्थ सत्य की प्राप्ति नहीं कर सकता तो निश्चय ही उसे उन ऋषियों के महान लेखों की सहायता प्राप्त करनी चाहिए, जिन्होंने आध्यात्मिक ध्रुव सत्य को प्राप्त करने का दावा किया है। इस प्रकार जो कुछ श्रद्धा के द्वारा स्वीकार किया गया था उसकी वास्तविकता को तर्क द्वारा सिद्ध करने के प्रबल प्रयास किए गए। यह ढंग बुद्धि, संगत नहीं हो, ऐसी बात नहीं है, क्योंकि दर्शन उस प्रयास का ही दूसरा नाम है जो मानव समाज के बढ़ते हुए अनुभव की व्याख्या के लिए किया जाता है। किन्तु जिस खतरे से हमें सावधान रहना होगा वह यह है कि कहीं श्रद्धा को ही दार्शनिक विज्ञान का परिणाम स्वीकार न कर लिया जाए।

षड़दर्शन उन भारतीय दार्शनिक एवं धार्मिक विचारों के मंथन का परिपक्व परिणाम है जो हजारों वर्षो के चिन्तन से उतरा और हिन्दू(वैदिक) दर्शन के नाम से प्रचलित हुआ। इन्हें आस्तिक दर्शन भी कहा जाता है। दर्शन और उनके प्रणेता निम्नलिखित है।

1. पूर्व मीमांसाः महर्षि जैमिनी
2. वेदान्त (उत्तर मीमांसा): महर्षि बादरायण
3. सांख्यः महर्षि कपिल
4. वैशेषिकः महर्षि कणाद
5. न्यायः महर्षि गौतम
6. योगः महर्षि पतंजलि

वेद ज्ञान को समझने व समझाने के लिए दो प्रयास हुएः

1. दर्शनशास्त्र
2. ब्राह्मण और उपनिषदादि ग्रन्थ।

ब्राह्मण और उपनिषदादि ग्रन्थों में अपने-अपने विषय के आप्त ज्ञाताओं द्वारा अपने शिष्यों, श्रद्धावान व जिज्ञासु लोगों की मूल वैदिक ज्ञान सरल भाषा में विस्तार से समझाया है। यह ऐसे ही है जैसे आज के युग में आइन्सटाइन को Theory of Relatively व अन्य विषयों का आप्त ज्ञाता माना जाता है तथा उसके कथनों व लेखों को अधिकांश लोग, बगैर ज्यादा अन्य प्रमाण के सत्य मान लेते है। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी है जो कि आइन्सटाइन की इन विषयों में सिद्धहस्ता (आप्तता) पर संदेह करते है, उनको समझाने के लिए तर्क (Logic) की आवश्यकता है। इसी तरह वेद ज्ञान को तर्क से समझाने के लिए छः दर्शनशास्त्र लिखे गये। सभी दर्शन मूल वेद ज्ञान को तर्क से सिद्ध करते है। प्रत्येक दर्शन शास्त्र का अपना-अपना विषय है। यह उसी तरह है जैसे कि भौतिक विज्ञान (Physics) में Newtonian Physics, Maganetism Atomi Physics, इत्यादि है। दर्शन

शास्त्र सूत्र रूप में लिखे गये है। प्रत्येक दर्शन अपने लिखने का उद्देश्य अपने प्रथम सूत्र में ही लिख तथा अन्त में अपने उद्देश्य की पूर्ति का सूत्र देता है। वैदिक ज्ञान की अद्वितीय पुस्तक भगवद्गीता के ज्ञान का आधार वेद, उपनिषद और दर्शन शास्त्र ही है।

भगवद्गीता 2-39 और 13-4 में कहा है कि :

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।

गीता 2-39

-हे अर्जुन! यह बुध्दि(ज्ञान) जो सांख्य के अनुसार मैंने तुझे कही है, अब यही बुध्दि मैं तुझे योग के अनुसार कहूंगा, जिसके ज्ञान से तू कर्म-बन्धन को नष्ट कर सकेगा।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।4।।

गीता13-4

इस क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (आत्मतत्वों) के विषय में ऋषियों ने वेदों ने विविध भाँति से समझाया है। (इन्ही के विषय) में ब्रह्मसूत्रों में पृथक्-पृथक् (शरीर जीवात्मा और परमात्मा के विषय में) युक्तियुक्त ढंग से (तर्क से) कथन किया है।

1. पूर्व मीमांसा

मीमांसा शब्द का अर्थ (पाणिनि के अनुसार) जिज्ञासा है। जिज्ञासा अर्थात् जानने की लालसा। अतः पूर्व-मीमांसा शब्द का अर्थ है जानने की प्रथम जिज्ञासा। इसके सोलह अध्याय हैं। मनुष्य जब इस संसार में अवतरित हुआ उसकी प्रथम जिज्ञासा यही रही थी कि वह क्या करे ? अतएव इस दर्शनशास्त्र का प्रथम सूत्र मनुष्य की इस इच्छा का प्रतीक है। दस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि जैमिनी है। इस ग्रन्थ में 12 अध्याय, 60 पाद और 2,631 सूत्र है। ग्रन्थ का आरम्भ ही महर्षि जैमिनि इस प्रकार करते है-

अधातो धर्मजिज्ञासा।।

अब धर्म करणीय कर्म के जानने की जिज्ञासा है। इस जिज्ञासा का उत्तर देने के लिए यह पूर्ण 16 अध्याय वाला ग्रन्थ रचा गया है। कर्म एक विस्तृत अर्थवाला शब्द है। अतः इसके विषय में 16 अध्याय और 64 पादोंवाला ग्रन्थ लिखना उचित ही था। यहाँ हम इस ग्रन्थ की झलक मात्र भी देने में असमर्थ हैं। केवल इतना बता देना ही पर्याप्त समझते है कि धर्म की व्याख्या यजुर्वेद में की गयी है। वेद के प्रारम्भ में ही यज्ञ की महिमा का वर्णन है। वैदिक परिपाटी में यज्ञ का अर्थ देव-यज्ञ ही नहीं है, वरन इसमें मनुष्य के प्रत्येक प्रकार के कार्यों का समावेश हो जाता है।

बढ़ई जब वृक्ष की लकड़ी से कुर्सी अथवा मेज बनाता है तो वह यज्ञ ही करता है। वृक्ष का तना जो मूल रूप में ईधन के अतिरिक्त,किसी भी उपयोगी काम का नहीं होता, उसे बढ़ई ने उपकारी रूप देकर मानव का कल्याण किया है। अतः बढ़ई का कार्य यज्ञरूप ही है। एक अन्य उदाहरण ले सकते हैं। कच्चे लौह को लेकर योग्य वैज्ञानिक और कुशल शिल्पी एक सुन्दर कपड़ा सीने की मशीन बना देते हैं। इस कार्य से मानव का कल्याण हुआ। इस कारण यह भी यज्ञरूप है। सभी प्रकार के कर्मों की व्याख्या इस दर्शन शास्त्र में है। ज्ञान उपलब्धि के जिन छह साधनों की चर्चा इसमें की गई है, वे है-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि। मीमांसा दर्शन के अनुसार वेद अपौरूषेय, नित्य एवं सर्वोपरि है और वेद-प्रतिपादित अर्थ को ही धर्म कहा गया है। मीमांसा सिद्धान्त में वक्तव्य के दो विभाग है- पहला है अपरिहार्य विधि जिसमें उत्पत्ति, विनियोग, प्रयोग और अधिकार विधियां शामिल है। दूसरा विभाग है अर्थवाद जिसमें स्तुति और व्याख्या की प्रधानता है।

2. ब्रह्मसूत्र (उत्तर मीमांसा)

जब मनुष्य जीवन-यापन करने लगता है तो उसके मन में दूसरी जिज्ञासा जो उठती है, वह है ब्रह्म - जिज्ञासा। ब्रह्मसूत्र का प्रथम सूत्र ही है-

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।।

ब्रह्म के जानने की लालसा। इस जिज्ञासा का चित्रण श्वेताश्वर उपनिषद् में बहुत बहुत भली-भाँति किया गया है। उपनिषद् का प्रथम मंत्र है-ब्रह्मवादिनो वदन्ति-

किं कारण ब्रह्म कुतः सम जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।

अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।।

अर्थ-ब्रह्म का वर्णन करने वाले कहते है, इस (जगत्) का कारण क्या है, हम कहाँ से उत्पन्न है ?कहाँ स्थित है ? (कैसे स्थित है ?)यह सुख-दुःख क्यों होता है ? ब्रह्म की जिज्ञासा करने वाला यह जानने चाहते हैं। उत्पन्न हुआ कि यह सब क्या है, क्यों हैं ? इत्यादि। पहली जिज्ञासा कर्म धर्म की जिज्ञासा थी और दूसरी जिज्ञासा जगत् का मूल कारण जानने ज्ञान की थी। इस दूसरी जिज्ञासा का उत्तर ही ब्रह्मसूत्र अर्थात् उत्तर मीमांसा है। चूँकि यह दर्शन वेद के परम ओर अन्तिम तात्पर्य का दिग्दर्शन कराता है, इसलिए इसे वेदान्त दर्शन के नाम से ही जाना जाता हैं। वेदस्य अन्तः अन्तिमो भाग ति वेदान्तः।। यह वेद के अन्तिम ध्येय ओर कार्य क्षेत्र की शिक्षा देता है। ब्रह्मसुत्र के प्रवर्तक महर्षि बादरायण है। इस दर्शन में चार अध्याय, प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद (कुल 16 पाद) और सूत्रों की संख्या 555 है। इसमें बताया गया है कि तीन ब्रह्म अर्थात् मूल पदार्थ है-प्रकृति,जीवात्मा और परमात्मा। तीनों अनादि है। इनका आदि-अन्त नहीं। तीनों ब्रह्म कहाते है और जिसमें ये तीनो विद्यमान है अर्थात् जगत् वह परम ब्रह्म है। प्रकृति जो जगत् का उपादान कारण है, परमाणुरूप है जो त्रिट (तीन शक्तियो-सत्व, राजस्

और तमस् का गुट) है। इन तीनो अनादि पदार्थों का वर्णन ब्रह्मसूत्र(उत्तर मीमांसा) में है। जीवात्मा का वर्णन करते हुए इसके जन्म-मरण के बन्धन में आने का वर्णन भी ब्रह्मसूत्र में है। साथ ही मरण-जन्म से छुटकारा पाने का भी वर्णन है। परमात्मा जो अपने शबत रूप में तत्वों से संयुक्त होकर भासता है, परन्तु उसका अपना शुद्ध रूप नेति-नेति शब्दों से ही व्यक्त होता है।
यह दर्शन भी वेद के कहे मन्त्रों की व्याख्या में ही है।

3. सांख्य दर्शन

सांख्य सृष्टि रचना की व्याख्या एवं प्रकृति और पुरूष की पृथक-पृथक व्याख्या करता है। सांख्य सर्वाधिक पौराणिक दर्शन माना जाता है। भारतीय समाज पर इसका इतना व्यापक प्रभाव हो चुका था कि महाभारत (श्रीमद्भगवद्गीता), विभिन्न पुराणों, उपनिषदों, चरक संहिता और मनु संहिता में सांख्य के विशिष्ट उल्लेख मिलते है। इसके पारंपरिक जन्मदाता कपिल मुनि थे। सांख्य दर्शन में छह अध्याय और 451 सूत्र है। प्रकृति से लेकर स्थुल-भूत पर्यन्त सारे तत्वों की संख्या की गणना किये जाने से इसे सांख्य दर्शन कहते है। सांख्य सांख्या द्योतक है। इस शास्त्र का नाम सांख्य दर्शन इसलिए पड़ा कि इसमें 25 तत्व या सत्य-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरूष और प्रकृति से हुआ है। पुरूष में स्वयं आत्मा का भाव है जबकि प्रकृति पदार्थ और सृजनात्मक शक्ति की जननी है। विश्व की आत्मायें संख्यातीत है जिसमें चेतना तो है पर गुणों का अभाव है। वही प्रकृति मात्र तीन गुणो के समन्वय से बनी है। इस त्रिगुण सिद्धान्त के अनुसार सत्व, राजस्व तथा तमस की उत्पत्ति होती है। प्रकृति की अविकसित अवस्था में यह गुण निष्क्रिय होते है पर परमात्मा के तेज सृष्टि के उदय की प्रक्रिया प्रारम्भ होते ही प्रकृति के तीन गुणो के बीच का समेकित संतुलन टूट जाता है। सांख्य के अनुसार 24 मूल तत्व होते है जिसमें प्रकृति और पुरूष पच्चीसवां है। प्रकृति का स्वभाव अन्तर्वर्ती और पुरूष का अर्थ व्यक्ति-आत्मा है विश्व की आत्माएं संख्यातीत है। ये सभी आत्मायें समान है और विकास की तटस्थ दर्शिकाएं हैं। आत्माए किसी न किसी रूप में प्रकृति से संबंधित हो जाती है और उनकी मुक्ति इसी में होती है कि प्रकृति से अपने विभेद का अनुभव करे। जब आत्माओं और गुणों के बीच की भिन्नता का गहरा ज्ञान हो जाये तो इनसे मुक्ति मिलती है और मोक्ष संभव होता है। प्रकृति मूल रूप में सत्व,रजस्, तमस की साम्यावस्था को कहते है। तीनो आवेश परस्पर एक दूसरे को निःशेष (neutralize) कर रहे होते हैं। जैसे त्रिकंटी की तीन टांगे एक दूसरे को निःशेष कर रही होती है। परमात्मा का तेज परमाणु (त्रित) की साम्यावस्था को भंग करता है और असाम्यावस्था आरंभ होती है। रचना-कार्य में यह प्रथम परिवर्तन है। इस अवस्था को महत् कहते है। यह प्रकृति का प्रथम परिणाम है। मन और बुध्दि इसी महत् से बनते हैं। इसमें परमाणु की तीन शक्तिया बर्हिमुख होने से आस-पास के परमाणुओ को आकर्षित करने लगती है। अब परमाणु के समूह

बनने लगते है। तीन प्रकारके समूह देखे जाते है। एक वे है जिनसे रजस् गुण शेष रह जाता है। यह तेजस अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इलेक्ट्रोन कहते है। दूसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें सत्व गुण प्रधान होता है वह वैकारिक अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक प्रोटोन कहते है। तीसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें तमस् गुण प्रधान होता है इसे वर्तमान विज्ञान की भाषा में न्यूटोन कहते है। यह भूतादि अहंकार है। इन अहंकारों को वैदिक भाषा में आपः कहा जाता है। ये (अहंकार) प्रकृति का दूसरा परिणाम है। तदनन्तर इन अहंकारों से पाँच तन्मात्राएँ (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द) पाँच महाभूत बनते है अर्थात् तीनों अहंकार जब एक समूह में आते है तो वे परिमण्डल कहाते है। और भूतादि अहंकार एक स्थान पर (न्यूयादि संख्या में) एकत्रित हो जाते है तो भारी परमाणु-समूह बीच में हो जाते है और हल्के उनके चारो ओर घूमने लगते है। इसे वर्तमान विज्ञान "ऐटम" कहता है। दार्शनिक भाषा में इन्हें परिमण्डल कहते हैं। परिमण्डलों के समूह पाँच प्रकार के हैं। इनको महाभूत कहते हैं।

1. पार्थिव
2. जलीय
3. वायवीय
4. आग्नेय
5. आकाशीय

संख्या का प्रथम सूत्र है।

अथ त्रिविधदुखः खात्यन्तः निवृत्तिरत्यन्त पुरूषार्थः।।१।।

अर्थात् अब हम तीनों प्रकार के दुःखों-आधिभौतिक (शारीरिक), आधिदैविक एवं आध्यात्मिक से स्थायी एवं निर्मूल रूप से छुटकारा पाने के लिए सर्वोकृष्ट प्रयत्न का इस ग्रन्थ में वर्णन कर रहे हैं। सांख्य का उद्देश्य तीनो प्रकार के दुःखों की निवृत्ति करना है। तीन दुःख है। आधिभैतिक- यह मनुष्य को होने वाली शारीरिक दुःख है जैसे बीमारी, अपाहिज होना इत्यादि। आधिदैविक- यह देवी प्रकोपों द्वारा होने वाले दुःख है जैसे बाढ़, आंधी, तूफान, भूकंप इत्यादि के प्रकोप। आध्यात्मिक- यह दुःख सीधे मनुष्य की आत्मा को होते हैं जैसे कि कोई मनुष्य शारीरिक व दैविक दुःखों के होने पर भी दुःखी होता है। उदाहरणार्थ-कोई अपनी संतान अपना माता-पिता के बिछुड़ने पर दुःखी होता है अथवा कोई अपने समाज की अवस्था को देखकर दुःखी होता है।

सांख्य का एक अन्य सूत्र है-

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान,
महताऽहंकारोऽ हंकारत् पंचतन्मात्राण्युभयमिनिन्द्रियं
तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरूष इति पंचविंशतिर्गणः।।

अर्थात् सत्व, रजस और तमस की साम्यावस्था को प्रकृति कहते है। साम्यावस्था भंग होने पर बनते हैंः महत् तीन

अहंकार, पाँच तन्मात्राएँ, 10 इन्द्रियाँ और पाँच महाभूत। पच्चीसवां गण है पुरूष।

4. वैशेषिक दर्शन

मूल पदार्थ-परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति का वर्णन तो ब्रह्मसूत्र में है। ये तीन पदार्थ ब्रह्म कहाते है। प्रकृति के परिणाम अर्थात रूपान्तर दो प्रकार के हैं। महत अहंकार, तन्मात्रा तो अव्यक्त है, इनका वर्णन सांख्य दर्शन में है। परिमण्डल पंच महाभूत तथा महाभूतों से बने चराचर जगत् के सब पदार्थ व्यक्त पदार्थ कहलाते हैं। इनका वर्णन वैशेषिक दर्शन में है। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद है। चूंकि ये दर्शन परिमण्डल, पंच महाभूत और भूतों से बने सब पदार्थों का वर्णन करता है, इसलिए वैशेषिक दर्शन विज्ञान-मूलक है।

<u>वैशेषिक दर्शन के प्रथम दो सूत्र है-</u>

अथातो धर्म व्याख्यास्यामः।।

अब हम धर्म की व्याख्या करेंगे।

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।।

जिससे इहलौकिक और पारलौकिक (निःश्रेयस) सुख की सिध्दि होती है वह धर्म है।

कणाद के वैशेषिक दर्शन की गौतम के न्याय-दर्शन से भिन्नता इस बात में है कि इसमें छब्बीस के बजाय 7 ही तत्वों को विवेचन है। जिसमें विशेष पर अधिक बल दिया गया है। ये तत्व है-द्रव्य, गुण, कर्म, समन्वय,विशेष, और अभाव। वैसे वैशेषिक दर्शन बहुत कुछ न्याय दर्शन के समरूप है और इसका लक्ष्य जीवन में सांसारिक वासनाओं को त्याग कर सुख प्राप्त करना और ईश्वर के गंभीर ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा अंततः मोक्ष प्राप्त करना है। न्याय-दर्शन की तरह वैशेषिक भी प्रश्नोत्तर के रूप में ही लिखा गया है। जगत में पदार्थों की संख्या केवल छह है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समन्वय। क्योंकि इस दर्शन में विशेष पदार्थ सूक्ष्मता से निरूपण किया गया है। इसलिए इसका नाम वैशेषिक दर्शन है।

धर्म विशेष पसूताद द्रव्यगुणकर्म सामान्य विशेष समवायानां

पदार्थाना सधर्म्यवैधर्म्याभ्यिं तत्वज्ञानानिनः श्रेयसम्।। वैशेषिक 1|1|8

अर्थात् धर्म-विशेष से उत्पन्न हुए पदार्थ यथा, द्रव्य, गण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय-रूप पदार्थों के सम्मिलित और विभक्तधर्मो के अध्ययन-मनन और तत्वज्ञान से मोक्ष होता है। ये मोक्ष विश्व की अणुवीय प्रकृति तथा आत्मा से उसकी भिन्नता के अनुभव पर निर्भर कराता है। वैशेषिक दर्शन में पदार्थों का निरूपण निम्नलिखित रूप से हुआ है:

जलः यह शीतल स्पर्श वाला पदार्थ है।

तेजः उष्ण स्पर्श वाला गुण है।

कालः सारे कायो की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश में निमित्त होता है।

आत्माः इसकी पहचान चैतन्य-ज्ञान है।
मनः यह मनुष्य क अभ्यन्तर में सुख-दुःख आदि के ज्ञान का साधन है।
पंचभूतः पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश
पंच इन्द्रियः घ्राण, रसना, नेत्र, त्वचा और श्रोत्र
पंच-विषयः गंध,रस,रूप,स्पर्श तथा शब्द
बुद्धिः ये ज्ञान है और केवल आत्मा का गुण है।
नया ज्ञान अनुभव है और पिछला स्मरण।

संख्याः संख्या, परिमाण, पृथकता, संयोग और विभाग ये आदि गुणः सारे गुण द्रव्यों में रहते हैं।
अनुभवः यथार्थ (प्रमा, विद्या) एवं अयथार्थ, (अविद्या)
स्मृतिः पूर्व के अनुभव के संस्कारों से उत्पन्न ज्ञान
सुखः इष्ट विषय की प्राप्ति जिसका स्वभाव अनुकूल होता है। अतीत के विषयों के स्मरण एवं भविष्य में उनके संकल्प से सुख मनुष्य का परमोद्देश्य होता है।
दुःखः इष्ट के जाने या अनिष्ट के आने से होता है जिसकी प्रकृति प्रतिकूल होती है।
इच्छाः किसी अप्राप्त वस्तु की प्रार्थना ही इच्छ है जो फल या उपाय के हेतु होती है। धर्म, अधर्म या
अदृष्ठः वेद-विहित कर्म जो कर्ता के हित और मोक्ष का साधन होता है, धर्म कहलाता है। अधर्म से अहित और दुःख होता है जो प्रतिषिद्ध कर्मो से उपजता है। अदृष्ट में धर्म और अधर्म दोनों सम्मिलित रहते हैं।

वैशेषिक दर्शन के मुख्य पदार्थ

1. द्रव्यः द्रव्य गिनती में 9 है पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।।(विशैषिक 1।1।5) अर्थात पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन।
2. गुणः गुणों की संख्या चौबीस मानी गयी है जिनमें कुछ सामान्य और बाकी विशेष कहलाते हैं। जिन गुणो से द्रव्यों में बिखराव न हो उन्हें सामान्य (संख्या, वेग, आदि) और जिनसे बिखराव (रूप, बुध्दि, धर्म आदि) उन्हें विशेष गुण कहते है।
3. कर्मः किसी प्रयोजन को सिद्ध करने में कर्म की आवश्यकता होती है, इसलिए द्रव्य और गुण के साथ कर्म को भी मुख्य पदार्थ कहते हैं। चलना, फेंकना, हिलना आदि सभी कर्म । मनुष्य के कर्म पुण्य-पाप रूप होते हैं।
4. सामान्यः मनुष्यों में मनुष्यत्व, वृक्षों में वृक्षत्व जाति सामान्य है और ये बहुतों में होती है। दिशा, काल आदि में जाति नहीं होती क्योंकि ये अपने आप में अकेली है।
5. विशेषः देश काल की भिन्नता के बाद भी एक दूसरे के बीच पदार्थ जो विलक्षणता का भेद होता है वह उस द्रव्य में एक विशेष की उपस्थिति से होता है। उस पहचान या विलक्षण प्रतीति का एक निमित्त होता है-यथा गोमें गोत्व जाति से, शर्करा में मिठास से।

6. समभावः जहाँ गुण व गुणी का संबंध इतना घना है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।
7. अभावः इसे भी पदार्थ माना गया है। किसी भी वस्तु की उत्पत्ति से पूर्व उसका अभाव अथवा किसी एक वस्तु में दूसरी वस्तु के गुणों का अभाव (ये घट नहीं, पट है) आदि इसके उदाहरण है।

5. न्याय दर्शन

महर्षि अक्षपाद गौतम द्वारा प्रणीत न्याय दर्शन एक आस्तिक दर्शन है जिसमें ईश्वर कर्म-फल प्रदाता है। इस दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्रमाण है। न्याय शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है परन्तु दार्शनिक साहित्य में न्याय वह साधन है जिसकी सहायता से किसी प्रतिपाद्य विषय की सिद्ध या किसी सिद्धान्त का निराकरण होता है- नीयते प्राप्यते विविक्षितार्थ सिद्धिरनेन इति न्यायः।।
अतः न्यायदर्शन में अन्वेषण अर्थात् जाँच-पड़ताल के उपायों का वर्णन किया गया है।
इस ग्रन्थ में पाच अध्याय है तथा प्रत्येक अध्याय में दो दो आहिक हैं। कुल सूत्रों की संख्या 539 हैं।
न्यायदर्शन में अन्वेषण अर्थात् जाँच-पडताल के उपायों का वर्णन किया गया है कहा है कि सत्य की खोज के लिए सोलह तत्व है। उन तत्वों के द्वारा किसी भी पदार्थ की सत्यता (वास्तविकता) का पता किया जा सकता है। ये सोलह तत्व है- (1) प्रमाण, (2) प्रमेय, (3)संशय, (4) प्रयोजन, (5) दृष्टान्त, (6) सिद्धान्त, (7) अवयव, (8) तर्क (9) निर्णय, (10) बाद, (11) जल्प, (12) वितण्डा, (13) हेत्वाभास, (14) छल, (15) जाति और (16) निग्रहस्थानइन
सबका वर्णन न्याय दर्शन में है और इस प्रकार इस दर्शन शास्त्र तर्क करने का व्याकरण कह सकते हैं। वेदार्थ जानने में तर्क का विशेष महत्त्व है। अतः यह दर्शन शास्त्र वेदार्थ करने में सहायक है। दर्शन शास्त्र में कहा है-
तत्त्वज्ञानानिः श्रेयसाधिगमः।।
अर्थात्- इन सोलह तत्वों के ज्ञान से निश्रेयस् की प्राप्ति होती है। (सत्य की खोज में सफलता प्राप्ति होती है)

न्याय दर्शन के चार विभाग-

1. सामान्य ज्ञान की समस्या का निराकरण
2. जगत की समस्या का निराकरण
3. जीवात्मा की मुक्ति
4. परमात्मा का ज्ञान

न्याय दर्शन में आध्यात्मवाद की अपेक्षा तर्क एवं ज्ञान का आधिक्य है इसमें तर्क शास्त्र का प्रवेश इसलिए कराया गया क्योंकि स्पष्ट विचार एवं तर्क-संगत प्रमाण परमानन्द की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। न्याय दर्शन में
1. सामान्य ज्ञान 2. संसार की क्लिष्टता 3.जीवात्मा की मुक्ति एवं 4. परमात्मा का ज्ञान- इन चारों गंभीर उद्देश्यों को लक्ष्य बनाकर प्रमाण आदि 16 पदार्थ उनके तार्किक समाधान के माने गये है किन्तु इन सबमे प्रमाण ही मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

किसी विषय में यथार्थ ज्ञान पर पहुंचने और अपने या दूसरे के अयथार्थ ज्ञान की त्रुटि ज्ञात करना ही इस दर्शन का मुख्य उद्देश्य है। दुःख का अत्यन्तिक नाश ही मोक्ष है। न्याय दर्शन की अन्तिम दीक्षा यही है कि केवल ईश्वरीयता ही वांछित है, ज्ञातव्य है और प्राप्य है- यह संसार नहीं। पदार्थ और मोक्ष मुक्ति के लिए इन समस्याओं का समाधान आवश्यक है जो 16 पदार्थों के तत्वज्ञान से होता है। इनमें प्रमाण और प्रमेय भी है। तत्वज्ञान से मिथ्या-ज्ञान का नाश होता है। राग-द्वेष को सर्वथा नष्ट करके यही मोक्ष दिलाता है।

सोलह पदार्थों का तत्व-ज्ञान निम्नलिखित क्रम से मोक्ष का हेतु बनाता है।

दुःख-जन्म प्रवृति- दोष मिथ्यामानानाम उत्तरोत्तरापाये तदनंन्तरा पायायदपवर्गः।।

अर्थात-दुःख, जन्म, प्रवृति(धर्म-अधर्म),दोष (राग, द्वेष), और मिथ्या ज्ञान-इनमें से उत्तरोतर नाश द्वारा इसके पूर्व का नाश होने से अपवर्ग अर्थात् मोक्ष होता है। इनमें से प्रमेय के तत्व-ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है और प्रमाण आदि पदार्थ उस ज्ञान के साधन है। युक्ति तर्क है जो प्रमाणों की सहायता करता है। पक्ष-प्रतिपक्ष के द्वारा जो अर्थ का निश्चय है, वही निर्णय है। दूसरे अभिप्राय से कहे शब्दों का कुछ और ही अभिप्राय कल्पना करके दूषण देना छल है।

आत्मा का अस्तित्व - आत्मा, शरीर और इन्द्रियों में केवल आत्मा ही भोगने वाला है। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख और ज्ञान उसके चिन्ह है जिनसे वह शरीर से अलग जाना पड़ता है उसके भोगने का घर शरीर है। भोगने के साधन इन्द्रिय है। भोगने योग्य विषय (रूप रस,गंध, शब्द और स्पर्श) ये अर्थ है उस भोग का अनुभव बुध्दि है और अनुभव कराने वाला अंतःकरण मन है। सुख-दुःख का कराना फल है और अत्यान्तिक रूप से उससे छूटना ही मोक्ष है।

6. योग दर्शन

योग की प्रक्रिया विश्व के बहुत से देशों में प्रचलित है। अधिकांशतः यह आसनों के रूप में जानी जाती है। कहीं-कहीं प्राणायाम भी प्रचलित है। यह आसन इत्यादि योग दर्शन का बहुत ही छोटा भाग है। इस दर्शन की व्यवहारिक और आध्यात्मिक उपयोगिता सर्वमान्य है क्योकि योग के आसन एवं प्राणायाम का मनुष्य के शरीर एवं उसके प्राणों को बलवान एवं स्वस्थ्य बनाने में सक्षम योगदान रहा है। इस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि है। यह दर्शन चार पदों में विभक्त है जिनके सम्पूर्ण सूत्र संख्या 194 है। ये चार पद है:

समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद।

<u>योग दर्शन के प्रथम दो सूत्र है</u>।

अथ योगानुशासनम् ।।1।।

अर्थात योग की शिक्षा देना इस समस्त शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय समझना चाहिए ।

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ।।2।।
अर्थात चित्त या मन की स्मरणात्मक शक्ति की वृत्तियों को सब बुराई से दूर कर, शुभ गुणो में स्थिर करके, परमेश्वर के समीप अनुभव करते हुए मोक्ष प्राप्त करने के प्रयास को योग कहा जाता है। योग है जीवात्मा का सत्य के साथ संयोग अर्थात् सत्य-प्राप्ति का उपाय। यह माना जाता है कि ज्ञान की प्राप्ति मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है और ज्ञान बुध्दि की श्रेष्ठता से प्राप्त होता है।
भगवद्गीता में कहा गया है
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
अर्थात इस प्रकार बुध्दि से परे आत्मा को जानकर, आत्मा के द्वारा आत्मा को वश में करके (अपने पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है) यही योग है। इसे प्राप्त करने का उपाय योगदर्शन में बताया है। आत्मा पर नियंत्रण बुध्दि द्वारा, यह योग दर्शन का विषय है। इसका प्रारिम्भक पग योगदर्शन में ही बताया है
तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।। योग० 2-1
अर्थात-तप (निरंतर प्रयत्न), स्वाध्याय (अध्यात्म - विद्या का अध्ययन) और परमात्मा के आश्रय से योग का कार्यक्रम हो सकता है। अष्टांग योगः क्लेशों से मुक्ति पाने व चित्त को समहित करने के लिए योग के 8 अंगों का अभ्यास आवश्यक है। इस अभ्यास कीअवधि 8 भागों में विभक्त है- 1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान और 8. समाधि
मुख्यतः योग-क्रियाओं का लक्ष्य है बुतद्ध को विकास देना। यह कहा है कि बुध्दि के विकास का अन्तिम रूप है- ऋतंभरा तत्रप्रज्ञा।।
श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्।।
अर्थात-(योग से प्राप्त) बुध्दि से ऋतंभरा कहते है और इन्द्रियों से प्रत्यक्ष तथा अनुमान से होने वाला ज्ञान सामान्य बुध्दि से भिन्न विषय अर्थ वाला हो जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि जो ज्ञान सामान्य बुध्दि से प्राप्त होता है वह भिन्न है और ऋतंभरा (योग से सिद्ध हुई बुध्दि) से प्राप्त ज्ञान भिन्न अर्थ वाला हो जाता है। इससे ही अध्यात्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है जिससे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।
आभारः इस लेख के लिए काफी सामग्री श्री गुरूदत्त की पुस्तक "हमारी संस्कृति धरोहर" से ली गई है।

न्यायदर्शन

मानव जीवन का लक्ष्य एवं सांसारिक स्थिति में विवेचना अनुभवों के आधार पर करने वाला न्यायदर्शन, वस्तुवाद का पोषक है।इसके अनुसार जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है, जिसके द्वारा दुःखों की पूर्णतः निवृत्ति हो जाती है।

न्याय के मतानुसार जीवात्मा कर्ता एवं भोक्ता होने के साथ-साथ, ज्ञानादि से सम्पन्न नित्य तत्त्व है यह जहाँ

वस्तुवाद को मान्यता देता है, वहीं यथार्थवाद का भी पूरी तरह अनुगमन करता है। मानव जीवन में सुखों की प्राप्ति का उतना अधिक महत्त्व नहीं है, जितना कि दुःखों की निवृत्ति का। ज्ञानवान हो या अज्ञानी, हर छोटा बड़ा व्यक्ति सदैव सुख प्राप्ति का प्रयत्न करता ही रहता है। सभी चाहते हैं कि उन्हें सदा सुख ही मिले, कभी दुःखों का सामना न करना पड़े, उनकी समस्त अभिलाषायें पूर्ण होती रहें, परन्तु ऐसा होता नहीं। अपने आप को पूर्णतःसुखी कदाचित ही कोई अनुभव करता हो।

जिनको भरपेट भोजन, तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र तथा रहने के लिए मकान भी ठीक से उपलब्ध नहीं तथा दिन भर रोजी-रोटी के लिए मारे मारे फिरते हैं, उनकी कौन कहे; जिनके पास पर्याप्त धन-साधन, श्रेय-सम्मान सब कुछ है, वे भी अपने दुःखों का रोना रोते देखे जाते हैं। आखिर ऐसा क्यों है ? क्या कारण है कि मनुष्य चाहता तो सुख है; किन्तु मिलता उसे दुःख है। सुख-संतोष के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हुए भी वह अनेकानेक दुःखों एवं अभावों को प्राप्त होता रहता है। आज की वैज्ञानिक समुन्नति से, पहले की अपेक्षा कई गुना सुख के साधनों में बढ़ोत्तरी होने के उपरान्त भी स्थायी समाधान क्यों नहीं मिल सका ? जहाँ साधन विकसित हुए वहीं जटिल समस्याओं का प्रादुर्भाव भी हुआ। मनुष्य शान्ति-संतोष की कमी अनुभव करते हुए चिन्ताग्रस्त एवं दुःखी ही बना रहा। यही कारण है कि मानव जीवन में प्रसन्नता का सतत अभाव होता जा रहा है।

इन समस्त दुःखों एवं अभावों से मनुष्य किस प्रकार मुक्ति पा सकता है, प्राचीन ऋषियों-मनीषियों एवं भारतीय तत्त्वदर्शी महापुरुषों ने इसके लिए कई प्रकार के मार्गों का कथन किया है, जो प्रत्यक्ष रूप से भले ही प्रतिकूल व पृथक प्रतीत होते हों; परन्तु पात्र व रुचि के आधार पर सबका- अपना-अपना सच्चा दृष्टिकोण है। एक मार्ग वह है जो आत्मस्वरूप के ज्ञान के साथ-साथ भौतिक जगत के समस्त पदार्थों के प्रति आत्मबुद्धि का भाव रखते हुए पारलौकिक साधनों का उपदेश देता है। दूसरा मार्ग वह है जो जीवमात्र को ईश्वर का अंश बतलाकर, जीवन में सेवा व भक्तिभाव के समावेश से लाभान्वित होकर आत्मलाभ की बात बतलाता है। तीसरा मार्ग वह है जो सांसारिक पदार्थों एवं लौकिक घटनाक्रमों के प्रति सात्विकता पूर्ण दृष्टि रखते हुए, उनके प्रति असक्ति न होने को श्रेयस्कर बताता है।

इसी तीसरे मार्ग का अवलम्बन न्याय दर्शन करता है, जब कि वह ईश्वरोपासना, पुनर्जन्म, लोक-परलोक, आत्मा आदि में भी भरपूर आस्था रखने वाली है, फिर भी इन सबकी सम्यक उपलब्धि तथा इहलौकिक एवं परलौकिक जीवन की सफलता हेतु भौतिक जगत के पदार्थों एवं उससे संबंधित घटनाओं का कथन करता है। न्याय का मानना है कि जो भी ज्ञान मनुष्य को उपलब्ध है, वह इन्द्रियों व मन-बुद्धि के माध्यम से ही प्राप्त हुआ करता है। इन सबमें विकृति उत्पन्न होने की स्थिति में उपलब्ध ज्ञान भी उसी अनुपात में विकारयुक्त हो जाने के कारण उस विकृत ज्ञान का आधार लेकर जो भी निर्णय लिया जायेगा तथा उससे किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति नहीं की जा सकेगी। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए न्यायशास्त्र ने यह सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति की है कि संसार

में न आने के पश्चात यदि मनुष्य सत्कर्म व सद्व्यवहार के माध्यम से अपने दुःखों को दूर करना चाहे, तो सांसारिक संरचना में प्रयुक्त होने वाले जड़-चेतन सभी पदार्थों का वास्तविक स्वरूप भी जाने समझे। अनेक तरह के मतानुयायियों ने अपने अपने विचार से पदार्थों का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार का बतलाया है, जिसके कारण मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है। इस भ्रमात्मकतापूर्ण स्थिति से छुटकारा दिलाने के लिए न्यायशास्त्र ने तर्क व साक्ष्यों की ऐसी सुन्दर विचारधारा प्रस्तुत की है, जिससे पदार्थों के सही स्वरूप का निर्णय किया जा सके।

जिन साधनों से हमें ज्ञेय तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, उन्हीं साधनों को "न्याय" की संज्ञा दी गई है। कहा भी है कि-"नीयते विवक्षितार्थः अनेन इति न्यायः।"

गौतम के "न्याय सूत्र" से ही न्यायशास्त्र का इतिहास स्पष्ट रूप से प्रारम्भ होता है। प्राचीन ग्रन्थों में इस न्यायशास्त्र के कतिपय सिद्धान्तों की चर्चा तो आज भी विशद रूप से उपलब्ध है; परन्तु उस प्राचीन तर्कशास्त्र का सम्यक एवं सर्वांगपूर्ण स्वरूप क्या और कैसा था, इसका सही ज्ञान किसी को नहीं है। "बौद्ध दर्शन" के प्रकरणों में यह उल्लेख मिलता है कि बौद्ध मत वाले अपने मत का प्रतिपादन आस्तिक सिद्धान्तों के विरुद्ध किया करते थे। इसी का प्रतिषेध करने हेतु न्यायदर्शन की संरचना हुई। आगे इसका वर्णन किया जा रहा है। बुद्ध का समय छठी शताब्दी ईसा पूर्व माना जाता है। यही वह समय था जब गौतम ने न्यायशास्त्र की रचना की। न्यायदर्शन का एक नाम तर्कशास्त्र भी है। प्राचीन ग्रन्थ शास्त्रों में किन्हीं-किन्हीं स्थानों में गौतम तथा कहीं-कहीं अक्षपाद को न्यायदर्शन का रचयिता कहा गया है। आचार्य विश्वेश्वर की तर्कभाषा की भूमिका के अन्तर्गत में इसका उल्लेख है। उमेश मिश्र द्वारा रचित भारतीय दर्शन में कहा गया है कि तर्कशास्त्र बौद्धों के पहले भी था और वह बड़ा व्यापक था। इसके भिन्न-भिन्न प्राचीन नाम हैं। यथा-आन्तीक्षकी, हेतुशास्त्र, हेतुविद्या, तर्कशास्त्र, तर्कविद्या, वादविद्या, प्रमाणशास्त्र, वाकोवाक्य, तक्की, विमंसि आदि। न्यायसूत्र की संरचना कब हुई, इसका निर्णय कर पाना बहुत कठिन है। कारण कि विद्वानों ने ई. पू. छठवीं शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी के बीच अपनी मान्यतायें प्रस्तुत की हैं; परन्तु सबके अपने-अपने पक्ष तर्कयुक्त हैं। उससे किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता।

वेदान्त

वेदान्त का अर्थ

वेदान्त का अर्थ है- वेद का अन्त या सिद्धान्त। तात्पर्य यह है- "वह शास्त्र जिसके लिए उपनिषद ही प्रमाण है। वेदांत में जितनी बातों का उल्लेख है, उन सब का मूल उपनिषद है। इसलिए वेदान्त शास्त्र के वे ही सिद्धान्त माननीय हैं, जिसके साधक उपनिषद के वाक्य हैं। इन्हीं उपनिषदों को आधार बनाकर बादरायण मुनि ने ब्रह्मसूत्रों की रचना की। इन सूत्रों का मूल उपनिषदों में हैं। जैसा पूर्व में कहा गया है- उपनिषद में सभी दर्शनों के मूल सिद्धान्त हैं।

वेदान्त का साहित्य

ब्रह्मसूत्र- उपरिवर्णित विवेचन से स्पष्ट है कि वेदान्त का मूल ग्रन्थ उपनिषद ही है। अतः यदा-कदा वेदान्त शब्द उपनिषद का वाचक बनता दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदीय मूल वाक्यों के आधार पर ही बादरायण द्वारा अद्वैत वेदान्त के प्रतिपादन हेतु ब्रह्मसूत्र सुजित किया गया। महर्षि पाणिनी द्वारा अष्टाध्यायी में उल्लेखित "भिक्षुसूत्र" ही वस्तुतः ब्रह्मसूत्र है। संन्यासी, भिक्षु कहलाते हैं एवं उन्हीं के अध्ययन योग्य उपनिषदों पर आधारिक पराशर्य (पराशर पुत्र व्यास) द्वारा विरचित ब्रह्म सूत्र है, जो कि बहुत प्राचीन है। यही वेदांत दर्शन पूर्व मीमांसा के नाम से प्रख्यात है। महर्षि जैमिनि का मीमांसा दर्शन पूर्व मीमांसा कहलाता है, जो कि द्वादश अध्यायों में आबद्ध है। कहा जाता है कि जैमिनि द्वारा इन द्वादश अध्यायों के पश्चात चार अध्यायों में संकर्षण काण्ड (देवता काण्ड) का सृजन किया था। जो अब अनुपलब्ध है, इस प्रकार मीमांसा षोडश अध्यायों में सम्पन्न हुआ है। उसी सिलसिले में चार अध्यायों में उत्तर मीमांसा या ब्रह्म-सूत्र का सृजन हुआ। इन दोनों ग्रन्थों में अनेक आचार्यों का नामोल्लेख हुआ है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि बीस अध्यायों के रचनाकार कोई एक व्यक्ति थे, चाहे वे महर्षि जैमिनि हों अथवा बादरायण बादरि। पूर्वमीमांसा में कर्मकाण्ड एवं उत्तर मीमांसा में ज्ञानकाण्ड विवेचित है। उन दिनों विद्यमान समस्त आचार्य पूर्व एवं मीमांसा के समानरूपेण विद्वान थे। इसी कारण जिनके नामों का उल्लेख जैमिनीय सूत्र में है, उन्हीं का ब्रह्मसूत्र में भी है। वेदान्त संबंधी साहित्य प्रचुर मात्रा में विद्यमान है, जिसका उल्लेख अग्रिम पृष्ठों पर "वेदान्त का अन्य साहित्य और आचार्य परम्परा" शीर्षक में आचार्यों के नामों सहित विवेचित किया गया है।

वेदान्त दर्शन का स्वरूप और प्रतिपाद्य-विषय

"वेदों" के सर्वमान्य, सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त ही "वेदान्त" का प्रतिपाद्य हैं। उपनिषदों में ही ये सिद्धान्त मुख्यतः प्रतिपादित हुए हैं, इसलिए वे ही "वेदान्त" के पर्याय माने जाते हैं। परमात्मा का परम गुह्य ज्ञान वेदान्त के रूप में सर्वप्रथम उपनिषदों में ही प्रकट हुआ है। वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः.....(मुण्डक)। "वेदान्ते परम गुह्यम् पुराकल्पे प्रचोदितम्" (श्वेताश्वतर.) "यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तोवेदान्ते च प्रतिष्ठितः" (महानारायण) इत्यादि श्रुतिवचन उसी तथ्य का डिंडिम घोष करते हैं। इन श्रुति वचनों का सारांश इतना ही है कि संसार में जो कुछ भी दृश्यमान है और जहाँ तक हमारी बुद्धि अनुमान कर सकती है, उन सबका का मूल स्रोत्र एकमात्र "परब्रह्म" ही है। इस प्रकार ब्रह्मसूत्र प्रमुखतया ब्रह्म के स्वरूप को विवेचित करता है एवं इसी के संबंध से उसमें जीव एवं प्रकृति के संबंध में भी विचार प्रकट किया गया है। यह दर्शन चार अध्यायों एवं सोलह पादों में विभक्त है।

इनका प्रतिपाद्य क्रमशः निम्नवत है-

1. प्रथम अध्याय में वेदान्त से संबंधित समस्त वाक्यों का मुख्य आशय प्रकट करके उन समस्त विचारों को समन्वित किया गयाहै, जो बाहर से देखने पर परस्पर भिन्न एवं अनेक स्थलों पर तो विरोधी भी प्रतीत होते हैं प्रथम पाद में वे वाक्य दिये गये हैं, जिनमें ब्रह्म का स्पष्टतया कथन है, द्वितीय में वे वाक्य हैं, जिनमें ब्रह्म का स्पष्ट

कथन नहीं है एवं अभिप्राय उसकी उपासना से है। तृतीय में वे वाक्य समाविष्ट हैं, जिनमें ज्ञान रूप में ब्रह्म का वर्णन है। चतुर्थ पाद में विविध प्रकार के विचारों एवं संदिग्ध भावों से पूर्ण वाक्यों पर विचार किया गया है।

2- द्वितीय अध्याय का विषय "अविरोध" है। इसके अन्तर्गत श्रुतियों की जो परस्पर विरोधी सम्मतियाँ हैं, उनका मूल आशय प्रकट करके उनके द्वारा अद्वैत सिद्धान्त की सिद्धि की गयी है। इसके साथ ही वैदिक मतों (सांख्य, वैशेषिक, पाशुपत आदि) एवं अवैदिक सिद्धान्तों (जैन, बौद्ध आदि) के दोषों एवं उनकी अयथार्थता को दर्शाया गया है। आगे चलकर लिंग शरीर प्राण एवं इन्द्रियों के स्वरूप दिग्दर्शन के साथ पंचभूत एवं जीव से सम्बद्ध शंकाओं का निराकरण भी किया गया है।

3- तृतीय अध्याय की विषय वस्तु साधना है। इसके अन्तर्गत प्रथमतः स्वर्गादि प्राप्ति के साधनों के दोष दिखाकर ज्ञान एवं विद्या के वास्तविक स्त्रोत्र परमात्मा की उपासना प्रतिपादित की गयी है, जिसके द्वारा जीव ब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति में कर्मकाण्ड सिद्धान्त के अनुसार मात्र अग्निहोत्र आदि पर्याप्त नहीं वरन् ज्ञान एवं भक्ति द्वारा ही आत्मा और परमात्मा का सान्निध्य सम्भव है।

4- चतुर्थ अध्याय साधना का परिणाम होने से फलाध्याय है। इसके अन्तर्गत वायु, विद्युत एवं वरुण लोक से उच्च लोक-ब्रह्मलोक तक पहुँचने का वर्णन है, साथ ही जीव की मुक्ति, जीवन्मुक्त की मृत्यु एवं परलोक में उसकी गति आदि भी वर्णित है। अन्त में यह भी वर्णित है कि ब्रह्म की प्राप्ति होने से आत्मा की स्थिति किस प्रकार की होती है, जिससे वह पुनः संसार में आगमन नहीं करती। मुक्ति और निर्वाण की अवस्था यही है। इस प्रकार वेदान्त दर्शन में ईश्वर, प्रकृति, जीव, मरणोत्तर दशाएँ, पुनर्जन्म, ज्ञान,कर्म, उपासना, बन्धन एवं मोक्ष इन दस विषयों का प्रमुख रूप से विवेचन किया गया है।

वेदान्त का अन्य साहित्य और आचार्य परम्परा

ब्रह्मसूत्र के अतिरिक्त वेदान्त दर्शन का और भी साहित्य प्रचुर मात्रा में संप्राप्त होता है, जो विभिन्न आचार्यों ने विविध प्रकारेण ब्रह्म-सूत्र आदि ग्रन्थों पर भाष्य, वृत्तियाँ, टीकाएँ आदि लिखी हैं। यद्यपि प्राचीन आचार्यों में बादरि, आश्मरथ्य, आत्रेय, काशकृत्स्न, औडुलोमि एवं कार्ष्णाजिनि आजि के मतों का भी वर्णन प्राप्त है; किन्तु इनके ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। आइये जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनका व उनके आचार्यों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें। श्रृंगेरी पीठ के प्रतिष्ठित यति श्री विद्यारण्य स्वामी ने वेदान्त विषयक कई ग्रन्थ लिखे, जिनमें "पंचदशी" का विशेष स्थान है। इनके अन्य ग्रन्थ हैं- जीवन्मुक्ति विवेक, विवरण प्रमेय संग्रह, बृहदारण्यक वार्तिक सार आदि।

1. आद्य शंकराचार्य- ब्रह्म-सूत्र पर सर्व प्राचीन एवं प्रामाणिक भाष्य आद्य शंकराचार्य का उपलब्ध होता है। यह शांकरभाष्य के नाम से प्रख्यात है। विश्व में भारतीय दर्शन एवं शंकराचार्य के नाम से जितनी ख्याति प्राप्त की है, उतनी न किसी आचार्य ने प्राप्त की और न ग्रन्थ ने। शंकराचार्य का जन्म 788 ई. में तथा निर्वाण 820 ई. में हुआ बताया जाता है, इनके गुरु गोविन्दपाद तथा परम गुरु गौड़पादाचार्य थे। इनके ग्रन्थों में ब्रह्मसूत्र-भाष्य (शारीरिक

भाष्य), दशोपनिषद भाष्य, गीता-भाष्य, माण्डूक्यकारिका भाष्य, विवेकचूड़ामणि, उपदेश-साहस्री आदि प्रमुख हैं।

2- भास्कराचार्य- आचार्य शंकर के समकालीन भास्कराचार्य त्रिण्डीमत के वेदन्ती थे। ये ज्ञान एवं कर्म दोनों से मोक्ष स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार ब्रह्म के शक्ति-विक्षेप से ही सृष्टि और स्थिति व्यापार अनवरत चलता है। इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर एक लघु भाष्य लिखा है।

3- सर्वज्ञात्म मुनि- ये सुरेश्वराचार्य के शिष्य थे, जिन्होंने ब्रह्मसूत्र पर एक पद्यात्मक व्याख्या लिखी है, जो "संक्षेप-शारीरिक" नाम से प्रसिद्ध है।

4- अद्वैतानन्द- ये रामानन्द तीर्थ के शिष्य थे, इन्होंने शंकराचार्य की शारीरिक भाष्य पर "ब्रह्मविद्याभरण" नामक श्रेष्ठ व्याख्या लिखी है।

5- वाचस्पति मिश्र- वाचस्पति मिश्र ने भी शांकर- भाष्य पर "भामती" नामक उत्तम व्याख्या ग्रन्थ लिखा है। "ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा" नामक वेदान्त ग्रन्थ इन्हीं का है।

6- चित्सुखाचार्य- तेरहवीं सदी के चित्सुखाचार्य ने वेदान्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ "तत्त्व-दीपिका" नाम से लिखा, जिसने उन्हीं के नाम से "चित्सुखी" के रूप में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की।

7 - विद्यारण्य स्वामी

8- प्रकाशात्मा- इन्होंने पद्यपादकृत पंचपादिका पर "विवरण" नाम की व्याख्या का सृजन किया है। इसी के आधार पर "भामतीप्रस्थान" से पृथक "विवरण प्रस्थान" निर्मित हुआ है।

9- अमलानन्द- अमलानन्द (जो अनुभवानन्द के शिष्य थे) ने भामती पर "कल्पतरु" नामक व्याख्या एवं ब्रह्मसूत्र पर एक वृत्ति भी लिखी है। इसका अपर नाम "व्यासाश्रम" था।

चार्वाक

चार्वाक एक प्रसिद्ध अनीश्वरवादी और नास्तिक विद्वान। बाहस्पत्य। उक्त विद्वान द्वारा चलाया हुआ। (चार्वाक दर्शन के रचियता)मत या दर्शन जो कहलाता है। चार्वाक दर्शन मूल रूप से भौतिकवाद पर आधारित है। "लोकायत" जो ईश्वर को माने वह आस्तिक तथा जो ईश्वर को न माने वह नास्तिक। इसी अर्थ के आधार पर उन्होंने भारत के दर्शन-सम्प्रदायोंका भी विभाजन कर रखा है। इनके हिसाब से सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक तथा मीमांसा-वेदान्त तो आस्तिक सम्प्रदाय हैं जबकि जैन-बौद्ध और चार्वाक नास्तिक सम्प्रदाय हैं इसमें मजेदार बात यह है कि भारत के प्राचीनतम दार्शनिक सम्प्रदाय सांख्य सम्प्रदाय को इन कथित बुद्धिजीवियों ने आस्तिक सम्प्रदायों में शामिल कर रखा है जबकि सांख्य वाले ईश्वर को मानते ही नहीं, इस आधार पर कि उनके सम्पूर्ण सृष्टि-विवेचन में, सांख्य दार्शनिकों के मतानुसार, ईश्वर की कोई भूमिका ही नहीं है।

दरअसल भारत की सम्पूर्ण दार्शनिक परंपरा में ज्ञान का महत्त्व तो है, जन्म-बंधन-मोक्ष का महत्त्व तो है,

पर ईश्वर का कोई महत्व,या फिर कोई निर्णायक महत्त्व है ही नहीं, जैसा कि पश्चिम से भारत आई विदेशी विचारधाराओं में है। इसलिए भारत की दर्शन-परंपरा का अध्ययन और विवेचन ईश्वर को केन्द्र में रखकर हो ही नहीं सकता, और हुआ भी नहीं है। ईश्वर का, उसके प्रतिनिधि रूप ब्रह्मा-विष्णु-शिव-शक्ति का और उनके राम, कृष्ण सरीखे दस या चौबीस ही नहीं, बल्कि सभी पूर्णावतारों-अंशावतारों का मामला महाकाव्य-पुराणों का तो है, दर्शन ग्रंथों का नहीं है।

भारत की बौद्धिक परंपरा में सिर्फ चार्वाक को ही नास्तिक दर्शन माना गया है और इसके अलावा शेष सभी दर्शन आस्तिक दर्शन ही हैं। क्यों? इसलिए कि हमारे देश में नास्तिक सिर्फ उसे माना गया है जो पश्चिम की परिभाषा वाले धर्म या ईश्वर का नहीं, बल्कि वेद का निंदक या विरोधी माना गया है - "नास्तिको वेदनिन्दकः", अर्थात जो वेद की निन्दा करे वह नास्तिक है। चार्वाक के अलावा किसी ने भी, सांख्य से लेकर बौद्ध, जैन, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त तथा परवर्ती रामानुजी, रामानन्दी, सिख, उदासी, गोरखपंथी, नाथ, सिद्ध, राधास्वामी, आर्य समाज, ओशो तक जितने भी असंख्य विचार सम्प्रदाय हमारे देश में हुए हैं,किसी ने भी वेदों की निंदा नहीं की। इसलिए, आज खुद को भारतीय परंपरा का उत्तराधिकारी मानने वाले विद्वान अगर दर्शन सम्प्रदायों को नास्तिक-आस्तिक के वर्ग में रखते हैं और बौद्ध, जैन आदि को नास्तिक सम्प्रदाय मानने का वैचारिक अपराध करते हैं तो वे यह अपराध आज के महाब्राह्मणों के असर के कारण ही अज्ञानवश कर रहे हैं।

क्यों नहीं की किसी ने वेदों की निंदा? इसलिए नहीं कि वेद कोई धर्मग्रंथ हैं, किसी मसीहा का इलहाम हैं या ईश्वर का या उसके किसी सगे-संबंधी की शुभ सूचनाएं हैं। भारत की बौद्धिक परंपरा इनमें से किसी भी बात को स्वीकार ही नहीं करती। ये बातें इस परंपरा की सोच का हिस्सा हैं ही नहीं। वेद की निंदा किसी ने नहीं की, लेकिन एक चार्वाक ने की और वेदों को धूर्तों, चापलूसों और राक्षसों की बकवास तक कह दिया, इसलिए चार्वाक मुनि रेखांकित हो गए और नास्तिक मान लिए गए। पर उन्हें पूरे भारत में कोई ठोस परंपरा नहीं मिली, बेशक परंपरा ने उन्हें विचारकों की श्रेणी में जगह जरूर दे दी।

तर्कशास्त्र

तर्कशास्त्र शब्द अंग्रेजी का अनुवाद है। प्राचीन भारतीय दर्शन में इस प्रकार के नाम वाला कोई शास्त्र प्रसिद्ध नहीं है। "लॉजिक" भारतीय दर्शन में तर्कशास्त्र का जन्म स्वतंत्र शास्त्र के रूप में नहीं हुआ। अक्षपाद गोतम या गौतम का न्यायसूत्र पहला (ई॰ ३००)ग्रंथ है, जिसमें तथाकथित तर्कशास्त्र की समस्याओं पर व्यवस्थित ढंग से विचार किया गया है। उक्त सूत्रों का एक बड़ा भाग इन समस्याओं पर विचार करता है, फिर भी उक्त ग्रंथ में यह विषय दर्शनपद्धति के अंग के रूप में निरूपित हुआ है। न्याय दर्शन में सोलह परीक्षणीय पदार्थों का उल्लेख है। इनमें सर्वप्रथम प्रमाण नाम का विषय या पदार्थ है। वस्तुतः भारतीय दर्शन में आज के तर्कशास्त्र का स्थानापन्न कहा जा सकता है। किंतु प्रमाणशास्त्र "प्रमाणशास्त्र" की विषयवस्तु तर्कशास्त्र की अपेक्षा अधिक

विस्तृत है।

यूरोप में तर्कशास्त्र का प्रवर्तक एवं प्रतिष्ठाता यूनानी दार्शनिक अरस्तू (384-322 ई. पू.) समझा जाता है, यों उससे पहले कतिपय तर्कशास्त्रीय समस्याओं पर बैतंडिक (सोफिस्ट) शिक्षकों, सुकरात तथा अफलातुन या प्लेटो द्वारा कुछ कुछ चिंतन हुआ था। यह दिलचस्प बात है कि स्वयं अरस्तू, जिसने विचारों के इतिहास में पहली बार ज्ञान का विभिन्न शाखाओं में विभाजन किया, "तर्कशास्त्र" नाम से परिचित नहीं है। उसने अपनी एतदिविषयक विचारणा को "एनेलिटिक्स" (विश्लेषिकी) नाम से अभिहित किया है। तर्कशास्त्र के वाचक शब्द "लाजिका' का सर्वप्रथम प्रयोग रोमन लेखक सिसरो (106-43 ई. पू.) में मिलता है, यद्यपि वहाँ उसका अर्थ कुछ भिन्न है।

असस्तू के अनुसार तर्कशास्त्र का विषय चिंतन है, न कि चिंतन के वाहक शब्द प्रतीक। उसके तर्कशास्त्रीय ग्रंथों में मुख्यतःनिम्न विषयों का प्रतिपादन हुआ है : (1) पद (टर्म्स); (2) वाक्य या कथन; (3) अनुमान और उसके विविध रूप, जिन्हें न्यायवाक्यों (सिलाजिज्मों) के रूप में प्रकट किया जाता है। वाक्य पदों से बनता है। प्रत्येक पद कुछ वस्तुओं का संकेत करता है,और कुछ गुणों या विशेषताओं का बोधक भी होता है। वस्तुसंकेत की विशेषता पद का "डिनोटैशन" कहलाती है, संकेतित स्वरूप प्रकाशक गुणों को समष्टि रूप में "कॉनोशन" कहते हैं, जैसे "मनुष्य" पद का डिनोटेशन "सब मनुष्य" है, उसका कॉनोटेशन "प्राणित्व" तथा "बुद्धिसंपन्नत्व" है। (मनुष्य की परिभाषा है - मनुष्य एक बुद्धिसंपन्न प्राणी है।) प्रत्येक वाक्य में एक उद्देश्य पद होता है, एक विधेय पद और उन्हें जोड़नेवाला संयोजक। विधेय पद कई श्रेणियों के होते हैं, कुछ उद्देश्य का स्वरूप-कथन करनेवाले, कुछ उसकी बाहरी विशेषताओं को बतलानेवाले। विधेय पदों के वर्गीकरण का अरस्तू के परिभाषा संबंधी विचारों से घना संबंध है। वाक्यों (तर्कवाक्यों) या कथनों का वर्गीकरण भी कई प्रकार होता है; अर्थात गुण, परिमाण, संबंध और निश्चयात्मकता के अनुसार संबंध के अनुसार वाक्य कैटेगॉरिकल (कथन रूप : राम मनुष्य है); हेतुहेतुमद् (यदि नियुक्ति हुई, तो वह पटना जायेगा); और डिस्जंक्टिव (वह या तो मूर्ख है, या दुष्ट) होते हैं। निश्चायात्मकता के अनुसार कथनात्मक (राम यहाँ है), संभाव्य (संभव है वह पटना जाए) और निश्चयात्मक (वर्षा अवश्य होगी) तीन प्रकार के होते हैं। वाक्य का प्रमुख रूप "कैटेगारिकल" (निरपेक्ष कथन रूप)है। वैसे वाक्यों का वर्गीकरण गुण (विधेयात्मक तथा प्रतिषेधात्मक) तथा परिमाण (कुछ अथवा सर्व संबंधी) के अनुसार होता है। गुण और परिमाण के सम्मिलित प्रकारों के अनुरूप वर्गीकरण द्वारा चार तरह के वाक्य उपलब्ध होते हैं, जिन्हे रोमन अक्षरों - ए, ई, आई, ओ द्वारा संकेतिक किया जाता है। विधेयात्मक सर्व संबंधी वाक्य की संज्ञा ए है, जैसे "कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है"; कुछ संबंधी विधायक और निषेधक वाक्य क्रमशः आई व ओ कहाते है; यथा - "कुछ मनुष्य शिक्षित हैं" और "कुछ मनुष्य शिक्षित नहीं है।" अस्स्तू के तर्कशास्त्र का प्रधान प्रतिपाद्य विषय न्याय वाक्यों में व्यक्त किए जानेवाले अनुमान है; सही अनुमान 19 प्रकार के होते हैं जो चार तरह की

अवयव संहतियों में प्रकाशित किए जाते हैं। चार प्रकार के न्वायवाक्य या अवयव संहतियाँ "फिगर्स" कहलाती हैं, और उनमें पाए जानेवाले सही अनुमानरूप "मूड" कहे जाते हैं। ये "मूड" दूसरी "फिगरों" से पहली "फिगर" के रूपों में परिवर्तित किए जा सकते हैं। प्रथम "फिगर" सबसे पूर्ण "फिगर" मानी जाती है।

भारतीय दर्शन में, जैसा ऊपर कहा गया, जिस चीज का विकास हुआ, वह प्रमाणशास्त्र है; तथाकथित तर्कशास्त्र उसका एक भाग मात्र है। गोतम के "न्यायसूत्र" में प्रमा या यथार्थ ज्ञान के उत्पादक विशिष्ट या प्रधान कारण "प्रमाण" कहलाते हैं; उनकी संख्या चार है, अर्थात प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। भाइट मीमांसकों और वेदांतियों के अनुसार प्रमाण छह हैं, अर्थात उपयुक्त चार तथा अर्थापत्ति व अनुपलब्धि। भारतीय ज्ञान मीमांसा में उक्त प्रमाणों को लेकर बहुत चिंतन और विवाद हुआ है। बौद्धों, नैयायिकों, वेदांतियों आदि के द्वारा किया हुआ प्रत्यक्ष का विश्लेषण विशेष रूप में उनके अपने अपने तत्वमीमांसा संबंधी विचारों से प्रभावित है। न्याय के अनुसार अनुमान दो प्रकार का होता है, परार्थानुमान तथा स्वार्थानुमान। अनुमान के बोधक न्याय वाक्य में पाँच वाक्य होते हैं जो क्रमशः प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन कहलाते हैं। वेदांतियों के अनुसार इन पाँचों में से शुरू या बाद के तीन वाक्य अनुमान के लिये पर्याप्त है। बौद्ध तर्कशास्त्री धर्मकीर्ति के मत में त्रिरूप अर्थात तीन विशेषताओं से युक्त लिंग या हेतु ही अनुमान का कारण है। ये तीन विशेषताएँ हैं- अनुमेय या पक्ष (पर्वत) में निश्चित उपस्थिति; सपक्ष (महानस या रसोईघर) में ही उपस्थिति (सब सपक्षों में नहीं किंतु कुछ में) और असपक्ष या विपक्ष (सरोवर) में निश्चित अनुपस्थिति (समस्त विपक्षों में अनुपस्थिति)। यहाँ पर्वत पक्ष है, जहाँ धूम की उपस्थिति से अग्नि का अनुमान किया जाता है; रसोईधर सपक्ष है, जहाँ ही निश्चित उपस्थिति के साथ धूम की उपस्थिति विदित है, जहाँ अग्नि के साथ धूम की अनुपस्थिति निश्चित है।

तर्कशास्त्र का स्वरूप

जान स्टुआर्ट मिल के मत में तर्कशास्त्र का विषय अनुमितियाँ हैं, न कि अनुभवगम्य सत्य। तर्कशास्त्र विश्वासों का विज्ञान नहीं है, वह उपपत्ति का विज्ञान नहीं है। (एवीडेंस) अथवा साक्ष्य (प्रूफ)तर्कशास्त्र का क्षेत्र हमारे ज्ञान का वह अंश है, जिसका रूप पूर्वज्ञात होता है। तर्कशास्त्र का कार्य किसी सत्य का साक्ष्य जुटाना नहीं है सत्यों से अनुमित, वह यह आँकने का प्रयत्न है कि किसी अनुमिति के लिये उचित साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है या नहीं। संक्षेप में तर्कशास्त्र का काम सही अनुमिति के आधारों की खोज है।

तर्कशास्त्र का ज्ञान हममें यह देखने और आँकने की क्षमता उत्पन्न करता है कि किसी सत्य का साक्ष्य जुटाना नहीं है, वह यह आँकने का प्रयत्न है कि किसी अनुमिति के निश्चयात्मक आधारों का ज्ञापन ही है, अर्थात् उसका विषय निश्चयात्मक अनुमितियों और आधारभूत साक्ष्य के संबंधों को स्पष्ट करना अथवा उन नियमों को प्रकाश में लाना है जो सही अनुमान प्रक्रियाको नियंत्रित करते हैं। इसलिए कभी कभी कहा जाता है कि तर्कशास्त्र एक नियामक (नारमेटिव, आदर्शक, आदर्शान्वेषी) विज्ञान या शास्त्र है, जिसका कार्य अनुमिति या तर्क के

आदर्श रूपों को स्थिर करना है। इसके विपरीत भौतिकी या भौतिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि यथार्थान्वेषी (पाजिटिव) विज्ञान है, जो वस्तुसत्ता के यथार्थ या वास्तविक रूपों या नियमों का अन्वेषण करते हैं।

विज्ञानों का यह वर्गीकरण कुछ हद तक भ्रामक है। तर्कशास्त्र या आचारशास्त्र (नीतिशास्त्र) नियामक शास्त्र है, इस कथन का यह अर्थ लगाया जा सकता है कि उक्त शास्त्र कृत्रिम ढंग से क्षेत्रविशेष में मानव व्यवहार के नियमों का निर्देश करते हैं। मानो सही चिंतन एवं सही नैतिक व्यवहार के नियम मानव प्रकृति के निजी नियम न होकर उसपर बाहर से लादे जानेवाले नियम हैं। किंतु बात ऐसी नहीं है। वस्तुतः तर्कशास्त्र उन नियमों को, जो सही चिंतन प्रकारों में स्वतः, स्वभावतः ओतप्रोत समझे जाते हैं, प्रकट रूप में निर्देशित करने का उपकरण मात्र है। विचारशील मनुष्य स्वतः, स्वभावतः सही और गलत चिंतन में, निर्दोष एवं सदोष तर्कना -प्रकारों में अंतर करते हैं। किंतु इस प्रकार का अंतर करते हुए वे किन्हीं नियामक आदर्शो या कानूनों की अवगति या चेतना का परिचय नहीं देते। सही समझे जानेवाले तर्कना प्रकारों का विश्लेषण करके उनमें अनुस्यूत नियमों को सचेत जानकारी के धरातल पर लाना, यही तर्कशास्त्र का काम है। इसी प्रकार आचारशास्त्र भी हमें उन नियमों या आदर्शो की जानकारी देता है, जो हमारे भले बुरे के निर्णयों में, अनजाने रूप में, परिव्याप्त रहते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि विशिष्ट आचार पद्धति, अथवा किसी समाज की आचारसंहिता तथा नैतिक शिक्षा, उस समाज के नैतिक पक्षपातों को प्रकाशित करती है। इसी अर्थ में देशविशेष, कालविशेष अथवा समाजविशेष के नैतिक विचारक अपने देश, युग अथवा समाज के प्रतिनिधि चिंतक होते हैं।

तर्कशास्त्र के संबंध में उक्त मान्यता से एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष अनुगत होता है। यदि किन्हीं कारणों से मनुष्य की चिंतनप्रणाली अथवा तर्कप्रणाली में परिवर्तन या विकास हो, तो उसके अनुरूप तर्कशास्त्रीय मंतव्यों में भी परिवर्तन या विकास हो सकता है। तर्कशास्त्र के इतिहास में ऐसा भी होता है कि कालांतर में चिंतन के पुराने मानदंडों या नियमों में संशोधन आवश्यक हो जाता है; नए चिंतन प्रकारों की सृष्टि के साथ साथ नवीन तर्कशास्त्रीय नियमों का निरूपण भी अपेक्षित हो सकता है। यूरोप में जब भौतिक विज्ञान की प्रगति शुरू हुई, तो वहाँ क्रमशः अरस्तू की निगमन प्रणाली की आलोचना और उससे भिन्न आगमन प्रणाली की परिकल्पना और प्रशंसा भी होने लगी। यूरोपीय वैचारिक इतिहास में इस कोटि का कार्य लार्ड बेकन ने किया। बाद में, वैज्ञानिक अन्वेषण प्रणाली का अधिक विश्लेण हो चुकने पर, यूरोप के तर्कशास्त्रियों ने निगमनमूलक विचारपद्धति (डिडक्टिव सिस्टम) एवं परिकल्पना निगमन प्रणाली (हाइपोथेटिकल डिडक्टिव मेथड) जैसी अवधारणाओं का विकास किया। आगमनात्मक तर्कशास्त्र (इंडक्टिव लॉजिक) में उन नियमों का विचार किया जाता है, जो निरीक्षित घटनाओं या व्यापारों के आधार पर तत्संबंधी सामान्य कथनो की उपलब्धि या निरूपण संभव बनाते हैं। सामान्य कथन प्रायः व्याप्ति वाक्यों का रूप धारण कर लेते हैं। भारतीय प्रमाणशास्त्र में इस प्रश्न को लेकर कि व्याप्ति वाक्य की उपलब्धि कैसे होती है, काफी छानबीन की गई है। "जहाँ जहाँ धूम होता है, वहाँ अग्नि होती है यह व्याप्ति वाक्य है।

स्पष्ट ही हमारे निरीक्षण में धूम और अग्नि के साहचर्य के कुछ ही उदाहरण आते हैं। प्रश्न है, कुछ स्थितियों में निरीक्षित दो चीजों के साहचर्य से हम उनके सार्वदेशिक और सार्वकालिक साहचर्य की कल्पना के औचित्य को कैसे सिद्ध कर सकते है ?

इस समस्या को तर्कशास्त्र में आगमनात्मक प्लुति (इंडक्टिव लीप) की समस्या कहते हैं। परिकल्पना निगमनप्रणाली इस उलझन में पड़े बिना सामान्य कथनों अथवा व्याप्ति वाक्यों की प्रामाणिक प्रकल्पना के प्रश्न का समाधान प्रस्तुत कर देती है। संक्षेप में आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषण की प्रणाली यह है: निरीक्षित घटना सहतियों से प्रेरणा लेकर वैज्ञानिक अन्वेषक नियमसूत्रों की परिकल्पना करता है; इसके बाद वह उन परिकल्पनाओं से कुछ ऐसे निष्कर्ष निकालता है, जिनका प्रयागों द्वारा परीक्षण हो सके। जहाँ तक किसी परिकल्पना के निष्कर्ष प्रयोगविधि से समर्थन पाते हैं, वहाँ तक यह समझा जाता है कि वह परिकल्पना परीक्षा में सफल हुई। परिकल्पना में निहित सामान्य नियम अंततः अन्वेषक की स्वच्छंद कल्पना की सृष्टि होता है, ऐसा प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइन का मत है। प्रकृति के नियम आगमन प्रणाली से अन्वेषित होते हैं, यह मान्यता बहुत हद तक भ्रामक है। कहना यह चाहिए कि अनुभव सामग्री यानी अनुभूत घटना संहतियाँ, प्रशिक्षित वैज्ञानिक को उपयुक्त परिकल्पनाओं या संभाव्य प्राकृतिक नियमों के न्यूनाधिक शक्तिवाले संकेत भर देती हैं।

ऊपर हमने इस बात पर बल दिया कि नई तर्क प्रणालियों के विकास के साथ साथ तर्कशास्त्रीय सिद्धांतों के स्वरूप में भी न्यूनाधिक परिवर्तन होता है। इस दृष्टि से तर्कशास्त्र एक गतिशील विद्या है; वह स्थिर, शाश्वत नियमों का संकलन या उल्लेख मात्र नहीं हैं। वस्तुतः विभिन्न भौतिक, जैव एवं समाजशास्त्रीय विज्ञों के विकास ने तर्कशास्त्र को बहुत प्रभावित किया है। अनुमान और तर्कना की प्रणालियों तथा नियमों से अधिक आज विभिन विद्याओं की अन्वेषण प्रक्रिया अनुशीलन का विशिष्ट विषय बन गई है। उक्त प्रक्रिया की शास्त्रीय जाँच को रीतिमीमांसा (मेथडॉलॉजी) कहते हैं।

यहाँ एक ज्यादा महत्त्व का स्पष्टीकरण अपेक्षित है। अनुभव एवं चिंतन के विभिन क्षेत्रों में हमारी तर्कनाप्रक्रिया एक ही कोटि की नहीं होती। विज्ञान और गणित में तर्कना के तरीके एक प्रकार के हैं। साहित्यसमीक्षा अथवा नैतिक निर्णयों के क्षेत्र में भी ये तरीके काफी भिन्न हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि कला समीक्षा, साहित्य मीमांसा, नीतिशास्त्र आदि के क्षेत्रो में परीक्षकों के स्वमतस्थापन एवं परमतखंडन की प्रणलियाँ एक ही सी नहीं होतीं। वे काफी भिन्न भी हो सकती हैं और होती हैं। इस स्थिति को निम्नांकित शब्दों में भी प्रकट किया जाता है: गुणात्मक दृष्टि से भिन्न प्रत्येक कोटि के विषय-विवेचन (डिस्कोर्स)के नियामकमानदंड अथवा नियम बहुत कुछ अलग होते है; अर्थात चिंतन और विवेचन के प्रत्येक क्षेत्र का तर्कनाशास्त्र एक निराली कोटि का होता है। इससे अनुगत होता है कि सब प्रकार के चिंतन विवेचन का नियामक कोई एक तर्कशास्त्र नहीं है।

प्रतीकाश्रित (प्रतीकमूलक) तर्कशास्त्र

बीसवीं सदी में परंपरागत अरस्तू के तर्कशास्त्र से भिन्न प्रतीक मूलक या प्रतीकनिष्ठ तर्कशास्त्र का विकास हुआ है। कुछ परीक्षकों की दृष्टि में यह एक बड़ी घटना है। इस नये तर्कशास्त्र को गणितनिष्ठ तर्कशास्त्र भी कहते हैं उन्नीसवीं सदी के मध्य में दो अंग्रेज गणितज्ञों ने तर्कशास्त्र के इस नये रूप का आधार खड़ा किया; ये दो गणितज्ञ थे आगस्टस डि मार्गन तथा जार्ज बूल। इनका मुख्य अन्वेषण यह था कि अरस्तू के तर्कशास्त्र में जिन अनुमितियों का उल्लेख है, उनमें कहीं अधिक कोटियों की प्रामाणिक अनुमितियाँ हैं। अरस्तू के न्याय-वाक्य (सिलाजिज्म) में प्रकट की जाने अनुमितियों का आधार सिद्धांत वर्गसमावेश का नियम हैं। वैसे अनुमान का प्रसिद्ध उदाहरण हैः सब मनुष्य मरणशील है; यहाँ सुकरात मनुष्य है; इसलिए सुकरात मरणशील है यहाँ मरणशीलता मनुष्य नाम के वर्ग का व्यापक धर्म है; वह उस वर्ग में समावेशित सुकरात का भी धर्म है। मार्गन और बूल ने यह पता चलाया कि अनुमिति का असली आधार विशेष कोटि के संबंध होते है, वर्ग समावेश का नियम इन कई संबंधकों में से एक के अंतर्भूत है। अतः उस नियम को अनुमिति का स्वतंत्र सिद्धांत नहीं मानना चाहिए दूसरे, ऐसी अनेक अनुमितियाँ होती हैं, जो न्यायवाक्य के रूप में प्रकट नहीं की जा सकती। उदाहरण- "क की अवस्था ख से अधिक है और ख की अवस्था ग से अधिक है, इसलिये क की अवस्था ग से अधिक है।" प्रसिद्ध दार्शनिक एफ. एच. ब्रैडले (1846-1924) ने भी ऐसी अनुमितियों का संकेत किया है, जो अरस्तू के न्यायावाक्य में निवेशित नहीं हो सकतीं।

हमने कहा है कि नवीन विचारकों के अनुसार अनुमिति का आधार वाक्यों के बीच रहनेवाले कुछ संबंध हैं। स्वयं "संबंध" की अवधारणा को परिभाषित करना कठिन है। संबंधों का वर्गीकरण कई तरह से होता है। कुछ संबंध दो पदों या पदार्थों मे बीच होते हैं, कुछ तीन के, इत्यादि। कोई पदार्थ संबंधग्रस्त है, यदि उसके बारे में कुछ कथन करते हुए किसी दूसरे पदार्थ का उल्लेख आवश्यक हो। "राम सीता का पति है", "राजा ने अपने शत्रु को जहर दे दिया", "देवदत्त ने विष्णुदत्त से दस हजार रुपए लेकर मकान खरीद लिया"; - ये वाक्य क्रमशः द्विमूलक, त्रिमूलक एवं चतुर्मूलक संबंधों को प्रकट करते हैं। एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार संबंध सम(सिमेट्रीकल), विषम (अनसिमेट्रिकल), एवं अ-सम-विषम (नॉन्-सिमेट्रीकल) तीन प्रकार के होते हैं। जो संबंध करते है; यथा -राम श्याम का भाई है; देवदत्त विष्णुदत्त का हमउम्र है या सहपाठी है; इत्यादि।

विषम संबंध राम सीता का पति है। अ-सम विषम- देवदत्त विष्णुदत्त को प्यार करता है। एक प्रकार के संबंध उत्पलवी संबंध कहलाते है; उससे भिन्न अनुत्प्लवी। "अवस्था में बड़ा होना" ये सब उत्प्लवी (ट्रांजिटिव) संबंध हैं। यदि क ख से बड़ा, या लंबा या भारी है; और ख ग से तो यह सिद्ध होता है क ग से बड़ा या भारी है। अनुत्प्लवी संबंध- क ख का पिता है और ख ग का; यहाँ यह सिद्ध नहीं होता कि क ग का पिता है। जहाँ हम देखते हैं कि उत्पवी संबंध अनुमिति का हेतु बन जाता है। अरस्तु द्वारा प्रतिपादित वर्ग समावेश का सिद्धांत वस्तुत उत्प्लवी

संबंध का दूसरा उदाहरण आक्षेप संबंध (इंप्लीकेशन) है। यदि वाक्य य वाक्य र को आक्षित करता है, और र वाक्य ल को, तो य, ल को आक्षिप्त करता है।

प्रतीकनिष्ठ तर्कशास्त्र की एक अन्य विशेषता यह है कि वहाँ वाक्यों और उनके संबंधों को प्रतीकों के द्वारा व्यक्त किया जाता है। अनुमिति के आधार वाक्यों के विशिष्ट संबंध है; ये संबंध वाक्यों के आकार (फॉर्म) पर निर्भर करते हैं, न कि उनके अर्थों पर। फलतः वाक्यों के अर्थों का विचार किए बिना, उनके आकारों में अनुस्यूत संबंधों को, और उनपर आधारित अनुमितियों को, प्रतीकों की भाषा में प्रकट किया जा सकता है। प्रतीकित होने पर विभिन्न संबंधों को संक्षेप में प्रकट किया जा सकता है। यह प्रक्रिया गणित की श्लाघनीय विशेषता है। गणित शास्त्र की उन्नति का एक प्रधान हेतु संख्याओं को दशमलव विधि (डेसमिल सिस्टम) से लिखने का आविष्कार था यह आविष्कार भारतवर्ष में हुआ।

अंकों को लिखने की रोमन प्रणाली में दस, पचास सौ आदि संख्याओं के लिए अलग अलग संकेत चिन्ह है; इसके विपरीत प्रचलित दशमलव प्रणाली में अंक विशेष का मूल्य उसकी स्थिति के अनुसार होता है, और सिफ नौ अंकों तथा शून्य-चिह्न, की मदद से किसी भी संख्या को प्रकट किया जा सकता है। प्रतीकनिष्ठ तर्कशास्त्र में वर्गों, वाक्यों आदि को प्रतीकों में प्रकट करके उनसे संबद्ध अनुमितियों के नियम प्रतिपादित किए गए हैं। वर्गकलन (कैलकुलस आफ क्लासेज) में वर्गों के पारस्परिक संबंधों, विरोध आदि के नियम बतलाए गए हैं। इसी प्रकार वाक्यसंबंधों, विरोध आदि के नियम बतलाए गए हैं इसी प्रकार वाक्यकलन (कैलकुलस ऑव प्रापोजीशंस) में वाक्यसंबंधों के नियामक सिद्धातों या नियमों का उल्लेख रहता है। अरस्तू के न्यायवाक्य में सन्निहित सिद्धांत उक्त नियमों में से ही एक है। इससे प्रकट है कि प्रतीकनिष्ठ तर्कशास्त्र का अनुमित्तिक्षेत्र अरस्तू के तर्कशास्त्र की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है।

डॉ. राकेश पाराशर,
उपनिदेशक (हिंदी शिक्षण योजना),
पश्चिम क्षेत्र





सुभद्रा कुमारी चौहान

जन्म : 16 अगस्त, 1904 निधन : 15 फरवरी, 1948

भा.क.नि.

भारतीय कपास निगम लिमिटेड

एक मिनी रत्न कंपनी
(भारत सरकार का उपक्रम)
कपास भवन, प्लॉट नं. 3 A सेक्टर 10,
सी.बी.डी. बेलापुर, नवी मुम्बई - 400 614, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : 022-27579217 फैक्स : 022-27576030

सत्यमेव जयते

वस्त्र मंत्रालय, भारत सरकार
उद्योग भवन, नई दिल्ली - 110 011
www.ministryoftextiles.gov.in

"राजभाषा रश्मि" छमाही पत्रिका का प्रकाशन **ललित कुमार गुप्ता**, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, भारतीय कपास निगम लिमिटेड, नवी मुंबई - 400 614